आज के सन्दर्भ में समन्वित-योग

लेखक——स्वामी ज्योतिर्मयानन्द



अनुवादक : डा० शशिभूषण मिश्र

प्राप्ति स्थान



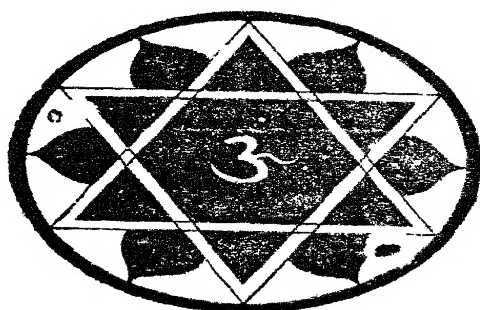
'INTEGRAL YOGA TODAY' का अविकल हिन्दी अनुवाद

• प्रकाशक—डा० शशिभूषण मिश्र

० प्रथम संस्करण— फरवरी १९८८

मूल्य——३० रुपये मात्र

योग ज्योति प्रेस, लालबाग, लोनी, (गाजियाबाद) से मुद्रित एवं प्रकाशित



आभार ज्ञापन

हम सभी अपने
सहयोगी एवं मियामी
(अमेरिका) के थिओसोफिकल
सोसायटी के उन मित्रों के आभारी हैं
जिन्होंने लेखक को स्नेह सिंचित आतिथ्य
प्रदान कर इस व्याख्यान माला को पूर्ण
करवाया और जो निरन्तर मानव
सेवा के कार्यों में संलग्न होकर
मानवता का उपकार
कर रहे हैं।

****

इन्टरनेशनल योग सोसायटी के

प्रमुख उद्देश्य

****

१. जाति, लिग, सम्प्रदाय की संकीर्णता से परे होकर सभी को सर्वत्र व्याप्त एक ही दिव्य जीवन की अनुभूति कराते हुए, सभी धर्मो के संत, महात्मा, अवतार, गुरु तथा आध्यात्मिक उपदेशों में वर्तमान मूलभूत एकता को उद्घाटित कर संसार के समस्त धर्मों में सामञ्जस्य विकसित करना।

२ आध्यात्मिक जीवन के मूल्यों तथा दर्शन का प्रसार। प्रार्थना तथा ध्यान के माध्यम से उन्नत नैतिक मूल्यों की शिक्षा देकर पीड़ित मानवता की सेवा करना।

३. योग-वेदान्त और भारतीय दर्शन की शिक्षा देने के लिए नियमित एवं सुनियोजित कक्षायें चलाना। सार्वभौमिक शान्ति, प्रेम एवं सद्भावना को बढ़ावा देना।

४. जीवन के शाश्वत आध्यात्मिक मूल्यों के आधार पर मानवता के सांस्कृतिक उत्थान में योगदान करना। सभी लोगों में आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने की प्रेरणाग्नि प्रज्वलित करने के लिए गोष्ठि, परिचर्चा, सभा तथा सत्सङ्ग आयोजित करना। आध्यात्मिक साहित्यों का प्रकाशन करन।

५. रोगी तथा पीड़ित मानवता के लिए अस्पताल का निर्माण, लावारिस बच्चों, विधवाओं तथा त्यक्त वृद्धों की देखभाल के लिए विशिष्ट प्रकार के अनाथालयों इत्यादि की व्यवस्था करना।

समर्पण

मानवता के समस्त क्षेत्रों में विद्यमान सत्यम्, शिवम् एवं
सुन्दरम् का मूल स्रोत—जीवन के आध्यात्मिक
मूल्यों को उद्घाटित करने में संघर्षरत
आज के सभी साधकों को
सादर समर्पित !

—स्वामी ज्योतिर्मयानन्द

विषय सूची

क्रम सं०		पृ० सं

अनुवादकीय

श्री गुरुदेव की प्रेरणा एवं आन्तरिक मार्गदर्शन से INTEGRAL YOGA TODAY का अनुवाद पूर्ण हुआ। जिस दिन से इस पुस्तक को पढा था उसी दिन इसके अनुवाद की एक तीव्र कामना मन में स्थापित हो गयी। धीरे-धीरे एक एक लेख का अनुवाद भी आरंभ हुआ।

परन्तु, जिन भावों एवं प्रेरणाओं को श्री गुरुदेव ने अपने मूल अँग्रेजी लेखों में प्रेषित किया है उन्हें हिन्दी में नही ला पाया हूँ। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि भाव को समझते हुये भी उनको लिपि वद्ध करना संभव नहीं हो सका है। इसलिये, इस पुस्तक के सभी पाठकों को मेरा व्यक्तिगत परामर्श है कि वे मूल अँग्रेजी पुस्तक 'Integral Yoga Today' अवश्य पढ़ें। श्री गुरुदेव को लेखनी में जो अदृश्य शक्ति एवं प्रेरणा निहित है उसे अपनी कलम मे बाँध नहीं पाया हूँ। मूल पुस्तक के प्राण इन्हीं भावनाओं और शक्तियों में सन्निहित है।

अनुवाद करने के पीछे मूल भावना तो स्वांतः सुखाय ही रही है। यदि हमारे स्वयं की इस सुखानुभूति से दूसरों को भी कुछ प्राप्त हो जाय तो इससे हमें अत्यन्त प्रसन्नता होगी। व्यक्तिगत रूप से न तो लेखन का कोई अभ्यास है और न ही कोई साहित्यिक विद्वता। इसलिये इस अनुवाद में यत्र तत्र सर्वत्र कुछ न कुछ त्रुटियाँ होगी हीं। अपने विद्वान पाठकों से यही विनम्र प्रार्थना है कि भाषागत अशुद्धि एवं व्याकरण सम्बन्धि त्रुटियों की उपेक्षा करते हुये पुस्तक में वर्तमान मूल भावना को ग्रहण करने का प्रयास करें। हमें पूर्ण विश्वास है कि पूज्य गुरुदेव की इस छोटी-सी पुस्तक में पाठक अपने जीवन में समन्वित योग को कैसे व्यवहृत करें इस सम्बन्ध में प्रत्यक्ष एवं गत्यात्मक निर्देश प्राप्त कर सकते हैं।

पुस्तक के अध्ययन करने के पश्चात आप पायेंगे कि आपके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में योग प्रविष्ठ होने लगा है तथा सभी परिस्थितियों में योग भावना रखते हुए आप अपने सामान्य जीवन को ही योगमय बना रहे हैं।

पूज्य गुरुदेव का आशीर्वाद आप सबों को प्राप्त हो !

—डा० शशिभूषण मिश्र

इन्टरनेशनल योग सोसायटी
लालबाग, लोनी
गाजियाबाद, उ०प्र०

दिनाक ३-२-८८



स्वामी ललितानन्द

प्रकाशक की प्रस्तुति

अतीत के स्वर्णिम संस्कृति से एक नवीन जीवन पद्धति उद्घाटित की गई है जिसमें विश्व के सभी महान दार्शनिक और धार्मिक प्रणालियों का इस प्रकार पूर्ण समन्वय किया गया है कि आधुनिक युग में आपके लिए उनकी उपादेयता अत्यधिक हो गयी है ।

प्राचीन भारतीय महर्षियों ने एक ऐसी जीवन पद्धति तथा दार्शनिक प्रणाली का निर्माण किया था जिसके कारण उस समय का भारतीय समाज आध्यात्मिकता के एक उन्नत स्तर पर क्रियाशील था । उस समय के भारतीय समाज को जो सुख, समृद्धि और आनन्द प्राप्त था उसका मूलभुत कारण महर्षियों द्वारा प्रस्तुत कुशल जीवन, मार्गदर्शन एवं आध्यात्मिक निर्देशन था ।

काल चक्र के अनुसार धीरे-धीरे प्राचीन भारत की उत्कृष्टता और उन्नत प्रेरणा समाप्त होने लगी । जीवन के उन्नत मूल्यों के प्रति बढती असुग्राहकता के कारण मानव प्रकृति द्वारा दी गई चेतावनी की अनसुनी करता गया । परिणामतः एक ऐसे विकृत संसार का विकास हुआ जिसमें आज हम रहते हैं ।

सौभाग्य से समाज की गिरती हुई इस अवस्था के साथ-साथ भारत के अनेक संतो तथा महात्माओं द्वारा आज भी आध्यात्मिक विकास और पूर्णता के लिए अत्यन्त उत्कृष्ट प्रणाली और समन्वित मार्ग दर्शन प्रदान किया जा रहा है । योग सिद्धान्तों को जीवनान्तर्गत कार्यों में रूपांतरित करने के आन्दोलन के अग्रगणी नेता श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्दजी प्राचीन ऋषियों के ज्ञान को हमारे मध्य वितरित कर रहे है । आधुनिक युग में

श्री स्वामी ज्योतिर्मयानंदजी समन्वित योग के विश्व प्रसिद्ध प्रवर्तक हैं। समन्वित योग एक ऐसी प्रणाली और जीवन पद्धति है जिसमें व्यक्तित्व के सभी पक्षों का सन्तुलित और पूर्ण विकास के लिए सभी प्रमुख योगों का सम्यक् समन्वय किया गया है जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य –आत्मसाक्षात्कार की अनुभूति करता है।

मियामी, फ्लोरिडा (अमेरिका) के थियोसोफिकल सोसायटी के आग्रह पर श्री स्वामीजी ने समन्वित योग तथा दैनिक जीवन में उसके व्यवहार से सम्बन्धित कई व्याख्यान दिए। उनके व्याख्यान में उपस्थित श्रोता कई वर्गों के थे। कुछ तो सर्वप्रथम योगव्याख्यान में केवल उत्सुकता वश आए थे, कुछ स्वामीजी के पुराने शिष्य थे और कुछ ऐसे थे जिन्हें विश्व की विभिन्न दार्शनिक प्रणालियों का उत्कृष्ट ज्ञान था। कुछ श्रोता ऐसे थे जिन्हे यह आशा थी कि स्वामी जी के सहज परन्तु अत्यन्त गंभीर एवं प्रेरक उपदेशों से उन्हें सुख-शाति और जीवन के प्रति नवीन दृष्टि प्राप्त होगी। श्रोता चाहे किसी भी वर्ग के क्यों न हों, परन्तु उन सबों को इस व्याख्यान माला से योग के विषय में नवीन दृष्टि, जीवन के प्रति गहरी समझ और संसार को सुख, शांति और सामजस्य से पूर्ण करने की स्थाई विधि ज्ञात हुई।

जैसे–जैसे व्याख्यान क्रम बढता गया, वैसे-वैसे इन दिव्य उपदेशों की महत्ता अधिक से अधिक लोगों को अनुभव होने लगी। परिणामत स्वामी जी के व्यक्तित्व विकास के व्यावहारिक एवं प्रेरक उपदेशों से आकृष्ट होकर अधिक संख्या मे श्रद्धालु उपस्थित होने लगे।

वास्तव में इस व्याख्यान माला की लोकप्रियता इतनी बढ गई कि अनेक जिज्ञासुओं ने योग रिसर्च फाउण्डेशन से इन व्याख्यानों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का निवेदन किया जिससे कि स्वामीजी के प्रेरक एवं व्यावहारिक उपदेशों को उन लोगों के पास पहुँचाया जा सके जो कि व्यक्तिगत रूप से व्याख्यान में नहीं सम्मिलित हो सके थे।

इसी का परिणाम है प्रस्तुत पुस्तक–**आज के संदर्भ में समन्वित-योग** हमें पूर्ण विश्वास है कि आप अपने जीवन को उन्नत करने की वे ही धनात्मक भावना और प्रेरणायें प्राप्त करेंगे जैसी कि व्याख्यान में उपस्थित सभी श्रोताओं को प्राप्त हुई तथा आज के संदर्भ में समन्वित योग का उपयोग कर सकेंगे।

स्वामी ललितानन्द

१

मन और उसका नियंत्रण

मन के विषय में बहुत परिचय देने की अवश्यकता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने मन और उसकी अनेक समस्याओं से अच्छी तरह परिचित है। उपनिषद् की शिक्षाओं के अनुसार मन ही बन्धन और मोक्ष दोनों का आधार और कारण है। मन किसी व्यक्ति को मुक्ति प्रदान कर सकता है, सभी कर्म बन्धनों से मुक्त हो सकता है और जन्म-मृत्यु के चक्र से स्वतंत्र हो सकता है: दूसरी ओर, यदि मन को अच्छी तरह नहीं समझ लिया गया है, यदि इसकी शक्ति को सुनियोजित कर सही दिशा में नहीं प्रयुक्त किया गया तो है यह व्यक्ति को दुःख के अँधेरे में डाल देगा और उसे तामसिकता के निम्नस्तर में ही रहने को विवश करेगा। इसलिए आप मन के कारण अपनी कल्पना से भी अधिक उन्नत अवस्था प्राप्त कर सकते है। मन का बल ऐसा ही विचित्र है।

मानव मन की तुलना जल में तैरते एक विशाल हिमखण्ड से की गई है जिसका एक छोटा अंश ही सामने दिखाई पड़ता है तथा बहुत बड़ा भाग जल के नीचे अदृश्य रहता है। आप इस जन्म में मन के जिस अंश का उपयोग कर रहे है वह आपके वास्तविक मन का बहुत छोटा सा भाग है। यदि आप अपने छुपे हुए मन को उद्घाटित कर लेंगे तो आपको अत्यन्त आश्चर्य होगा। मन की गहराई में प्रवेश कर आप अपने व्यक्तित्व में एक आध्यात्मिक शक्ति परिचालित कर देते हैं। परिणामतः आपको अद्भुत सफलतायें और उपलब्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं।

अत: प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष मन को उद्घाटित, नियंत्रित तथा व्यग्र करने वाले सभी विचारों पर विजय प्राप्त करने की चुनौती है। लोग कई क्षेत्रों में प्रकाण्ड विद्वता प्राप्त कर लेते है, विज्ञान और प्रकृति के गुप्त रहस्यों को उद्घाटित कर लेते हैं परन्तु बहुत कम व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हें मन के साथ कैसा वर्ताव करना चाहिए तथा काम, क्रोध, लोभ, घृणा, द्वेष और आसक्ति की भावनाओं से कैसे मन को बचाए रखना चाहिए इसका यथार्थ ज्ञान नहीं है। राजयोग में इसी विषय का वृहद् एवं विशेष ज्ञान प्रस्तुत किया गया है।

मन के विभिन्न पहलू

सबसे पहले मैं आपके समक्ष मन के विषय में कुछ विशेष तकनिकी बातों की चर्चा करूँगा। राजयोग सूत्र में पतञ्जलि महर्षि घोषित करते है—"चित्त की समस्त वृत्तियों के निरोध को ही योग कहते हैं।" चित्त का अर्थ सम्पूर्ण मन है। इस मन के चार अन्य पहलू हैं जो आपस में बड़ी जटिलता से मिले हुए हैं। मन के चार पहलू है—अहंकार, बुद्धि, चेतन मन (मनस) अचेतन मन। विषयों (इन्द्रियों) के सम्पर्क में मन का जो अंश आता है वह चेतन मन है। आदान-प्रदान का कार्य करता हुआ निरन्तर दोलायमान यह चेतनमन इन्द्रियो के द्वारा विभिन्न अनुभवों को ग्रहण करके उनके विश्लेषण और निर्णय के लिए उन्हें कोबुद्धि के समक्ष प्रस्तुत करता है। तब बुद्धि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त सभी अनुभवों को विश्लेषित, मूल्यांकित तथा सुव्यवस्थित करती है।

इसके बाद अहंकार का कार्य आरंभ होता है। अहंकार बुद्धि के निर्णय को प्रभावित करता है तथा बहुधा बुद्धि के ऊपर हावी रहता है। जब कोई विषय अहंकार को महत्वपूर्ण लगता है तो उसमें यह अधिक रूचि लेने लगता है। उदाहरण के लिए जब आप किसी दो व्यक्ति को कमरे के एक कोने में बाते करते देखते हैं तो सामान्य रूप से आपको उन बातों में कोई विशेष रूचि नहीं रहती है। परन्तु, ज्योंही आप उनकी बातों में अपनी चर्चा सुनते हैं तो आपके कान खड़े हो जाते हैं। इसी क्षण अहंकार क्रियाशील हो जाता है और बुद्धि की सुग्राहकता बढ़ जाती है। अहंकार के कारण स्थूल इन्द्रियों के माध्यम से चेतन मन

द्वारा जो अनुभव प्राप्त होता है वह बुद्धि के द्वार से गुजरता है। बुद्धि से विश्लेषित ज्ञान तब अचेतन मन में चला जाता है। राज-योग इसी अचेतन (Unconscious) पर विशेष बल देता है तथा सभी दु:खों और समस्याओं की इस जड़ को परिष्कृत और प्रशिक्षित करने की आवश्यकता बतलाता है। इसी अचेतन से ही काम, क्रोध, तृष्णा, ऋणात्मक भावनायें, निम्न प्रवृत्तियाँ तथा दुर्बल स्मृति के रूप में व्यक्ति की समस्त समस्याओं और दु खों का आरंभ होता है।

चित्त को ही साधारणत: लोग हृदय भी कहते हैं। यह ब्रह्माण्डीय मन से सम्बन्धित होता है। हृदय जब शुद्ध रहता है तो यह अन्त:प्राज्ञिक रूप ग्रहण कर ब्रह्माण्डीय मन के साथ संयुक्त हो जाता है। मानव मन की ऐसी क्षमता है। यह इतना उन्नत हो सकता है कि मानव मन ब्रह्माण्डीय मन के प्रवाह के लिए एक उपयुक्त माध्यम बन सकता है। जैसे ही मन को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है उसी क्षण से यह बन्धन का कारण नहीं बनता। इसलिए साधक के समक्ष एक दिव्य लक्ष्य यह है कि मन को परिशुद्ध कर उसका सही उपयोग करने की कला सीखे।

मन के क्लेशों को समाप्त करें

इस विषय में आपको कुछ विशेष बातों को समझ लेना आवश्यक है। पाँच प्रकार के क्लेशों को समाप्त करने की आवश्यकता है। पहला है अविद्या। जब अचेतन मन अशुद्ध और अनेक प्रकार की विकृतियों से भरा है तो इसमें आप की वास्तविक आत्मिक झलक नहीं प्रतिबिम्बित हो सकती। आपका अचेतन अविद्या की धूंध से प्रभावित रहता है। अविद्या से ही दूसरा क्लेश जिसे अस्मिता कहते हैं उत्पन्न होता है। अस्मिता के कारण ही व्यक्ति में यह धारणा बनती है—"यह मेरा है, यह तुम्हारा है। यह मैं हूँ।" अस्मिता से तीसरा और चौथा क्लेश जिसे राग और द्वेश कहते हैं उत्पन्न होते हैं। अहं चेतना में गहराई से स्थित मानव व्यक्तित्व राग और द्वेष के ताने-बाने से बना हुआ है। अपने मन को जब आप इस स्तर तक शुद्ध कर लेते है कि अस्मिता आप के व्यक्तित्व में प्रमुख भूमिका नहीं निभाता है तो राग-द्वेष धीरे-धीरे

समाप्त होने लगते हैं। इस स्थिति में आप सु:ख-दुाख को समान दृष्टि से देखने लगेंगे। परन्तु, जब तक अविद्या और अस्मिता का नाश नहीं हुआ रहता है तब तक राग-द्वेष बढ़ते जाते हैं और व्यक्ति के कष्ट और दु.खों का कारण बन जाते हैं। पाँचवा क्लेश अभिनिवेष कहलाता है। इसका शाब्दिक अर्थ मृत्यु-भय है। ये पाँच क्लेश निरन्तर मन को अशुद्ध करते हुए व्यग्र रखते हैं।

आपके वास्तविक स्वरूप के विषय में अचेतता का आधार -अविद्या, अस्मिता को विकसित कर इसे ही आपके स्वरूप के वास्तविक आधार के रूप में अनुभव कराता है। परन्तु, सच्चाई यह है कि आप अहंकारिक व्यक्तित्व नही है। अहंकार तो आता जाता रहता है। जाग्रतावस्था में तो यह स्वयं को बहुत निश्चयपूर्वक अभिव्यक्त करता है। परन्तु गहरी नींद में इसकी सत्ता ही समाप्त हो जाती है। व्यावहारिक जगत में आप अहंकार के इतने अधिक प्रभाव में रहते हैं कि आप को ऐसा अनुभव होने लगता है कि अहंकार के द्वारा ही सब कुछ संभव है। सोचिए तो सही, जब गहरी निद्रा में अहंकार क्रियाशील नहीं रहता तो आप की देख-रेख कौन करता है ? मृत्यु के बाद जब अस्मिता समाप्त हो जाती है तो एक शरीर से दूसरे शरीर में आत्मा की यात्रा कौन करता है ? एक रहस्यमय हाथ निद्रा और मृत्यूपरान्त यात्रा में आपको नियंत्रित करता हुआ यह प्रामाणित करता है कि आपके व्यक्तित्व मे अहंकार ही अन्तिम वास्तविकता नहीं है। अविद्या के कारण आप अस्मिता के अस्तित्व पर प्रश्न नहीं उठा पाते। ज्ञानयोग में इस विषय की चर्चा की गई है। जिसमें साधक—"मैं कौन हूँ ?" के विषय में गहन चिन्तन करता और उसका उत्तर प्राप्त करने का प्रयास करता है।

अहंकार (अस्मिता) ही राग द्वेष उत्पन्न करता है। सुखद स्थिति से मन आसक्ति उत्पन्न कर लेता है। उसके अन्दर एक कामना जाग्रत हो जाती है—'सुख देने वाली वस्तु और स्थिति निरन्तर मेरे पास रहें।' इस प्रकार की इच्छा से मन में राग संस्कार उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार प्रतिकूल परिस्थिति में मन में द्वेष उत्पन्न होता है—'मुझे कष्ट देने वाली

वस्तु और स्थिति को दूर करनी पड़गी।' यदि आप अपने मन का सूक्ष्म विश्लेषण करेंगे तो आपको अनुभव होगा कि राग और द्वेष ये दोनों ही भ्रामक संस्कार हैं। जो सुख और दुःख का कारण प्रतीत होता है वह वास्तव में वैसा है नहीं। जो सतह पर दिखाई पड़ रहा है वह भ्रामक और अवास्तविक है। जैसे ही आपकी बुद्धि विकसित और परिपक्व हो जाएगी तो आप अनुभव करेंगे कि अधिकांश लोगों के द्वारा जिसे सुख और आनन्द माना जाता है वह वास्तव में दु.ख का ही एक रूप है। सुख का एक अभिप्राय यह भी है कि उस वस्तु को अपने पास सुरक्षित रखने का प्रयास। एक बार उसे अपने पास सुरक्षित करने के पश्चात् भी आप निरन्तर इस भय के दबाव में रहते हैं कि कोई दूसरा इसे आप से ले न ले। जिसे आप सुख का कारण समझते हैं उसे प्राप्त करने तथा प्राप्त करके उसकी रक्षा करने में आपकी बहुत शक्ति का अपव्यय होता है तथा आप तनाव में रहते हैं। इसके अतिरिक्त जिन इन्द्रियों की सहायता से वह सुख उपलब्ध होता है वह क्रमश. दुर्बल हो जाती हैं। उदाहरण के लिए जब आपके कान कमजोर हो जायेंगे तो मधुर सङ्गीत का आनन्द आप नहीं ले सकते। जब आपकी पाचन-शक्ति अत्यन्त दुर्बल हो जाएगी तो बहुत स्वादिष्ट भोजन आपको कोई आनन्द नहीं दे सकता। विषय सुख अत्यन्त क्षणिक और सुख के आवरण में दुःख के ही प्रतिरूप हैं।

इसलिए सभी ऐन्द्रिक सुख आभासी, सतही और भ्रामक हैं। माया के कारण अचेतन मन में राग-द्वेष का संस्कार बनता जाता है। अभिषाप के रूप में प्राप्त हो रहे वरदान से सर्वथा अज्ञान रहने के कारण आप में द्वेष उत्पन्न हो जाता है। आनन्द के रूप में अभिषाप को स्वीकार कर आप अनजाने ही राग संस्कार को और तीव्र बना रहे हैं। ये दानों ही मानसिक क्लेश हैं।

जब राग और द्वेष बने रहते हैं तो आपमें अभिनिवेश उत्पन्न हो जाता है। दूसरे शब्दों में आप कर्म बँधन में उलझ जाते हैं। आप में यह भाव उत्पन्न हो जाता है—"मैं यह-शरीर हूँ"। जब यह मृत्यु का ग्रास बन जाता है तो मेरा अन्त हो जाता।" इसलिए आप मृत्यु-भय से

भयभीत रहते हैं। सभी योग प्रणालियों का लक्ष्य इस भय को समाप्त करना है। आपको योग-पथ पर कुछ सफलता मिली है कि नहीं इसको जानते के लिए आप अपने आप से प्रश्न करें—"क्या मुझमें मृत्यु-भय समाप्त हो गया है ? क्या मैं सहर्ष मृत्यु को स्वीकार कर सकता हूँ ? क्या मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ कि मृत्यु एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने की तरह सहज और स्वाभाविक है ?" बौधिक रूप से आपको विभिन्न धर्मों, दर्शनों और योगों का वृहद ज्ञान हो सकता है फिर भी यदि आप भय और असुरक्षा की भावना को समाप्त नहीं कर सके हैं तो निश्चित रूप से आपकी धार्मिक समझ में कहीं न कहीं कमी रह गई है। आध्यात्मिक सफलता इस बात पर निर्भर नहीं है कि आप कितना आध्यात्मिक ज्ञान रखते है बल्कि इसका वास्तविक आधार यह है कि आप जो कुछ भी जानते है उसको कितना अधिक जीवनान्तर्गत कार्यों में रूपांतरित करते हैं। जितने अंश तक आप मृत्यु-भय से मुक्त हो सके है उतने ही अंशों में आप आध्यात्मिक रूप से विकसित हैं।

एक तोते की प्राचीन कथा है जो दिन रात ईश्वर नाम का जप करता था। एक दिन जब एक बिल्ली उसे गुर्रा कर देखने लगी तो वह सारा राम-नाम भूल कर अपनी डरी-डरी आवज में प्राणों की भीख माँगने लगा। ठीक इसी प्रकार मानव मन भी कई प्रकार की क्रियाएँ करता रहता है परन्तु जब काल की बिल्ली उसे गुर्राकर देखने लगती है तो सारा मामला बदल जाता है।

इसलिए योग के समक्ष यह महान लक्ष्य है कि मन को प्रभावित, विकृत और अशुद्ध करने वाले इन पंच क्लेशों को निर्मूल करे। इसके लिए साधना की आवश्यकता है। अब मन को नियंत्रित करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण साधनाओं का वर्णन किया जा रहा है।

प्रतिपक्ष भावना

पहली महत्वपूर्ण साधना अपने मन को निरपेक्ष भाव से देखना तथा अशुभ (ऋणात्मक) विचारों की जगह शुभ (धनात्मक) विचार स्थापित करना है। इसे प्रतिपक्ष भावना कहते हैं जो राजयोग की एक विशेष

प्रणाली है। इसको एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा रहा है। मान लीजिए कि आपके मन में क्रोध के भाव उठ रहे हैं। प्रतिपक्ष भावना के अभ्यास में पहली अवस्था है बुरी वृत्ति को पहचानना। अर्थात् आप यह पहचान लें कि क्रोध एक बुरी भावना है और इसे आपके मन में नहीं उठनी चाहिए तथा आपके व्यक्तित्व को इससे प्रभावित नहीं होना चाहिए। यह सोचकर अपने क्रोध को सही नहीं सिद्ध कीजिए कि "जेसस क्राइस्ट भी कभी-कभी अपने शिष्यों की भलाई के लिए क्रोध करते थे तो मैं क्यों न करूँ?" जब आपको अपनी गलती की जानकारी हो जाएगी तो आपमें उस गलती को दूर करने की एक आंतरिक प्रेरणा भी उत्पन्न होगी।

ऋणात्मक वृत्ति को पहचान लेने के बाद अपने मन का अवलोकन (द्रष्टा भाव से) कीजिए। राजयोग मन के साथ संघर्ष करने की कभी बात नहीं करता। किसी कारण यदि मन में क्रोध के विचार उत्पन्न हो रहे हैं तो इन विचारों से संघर्ष नहीं कीजिए। आप बल पूर्वक उन्हें नहीं दूर कर सकते। मन में असफलता और निराशा के इन भावों को भी नहीं उठने दीजिए—"मैंने तो सार्वभौम प्रेम और सद्भाव को जीवनान्तर्गत क्रियाओं में लाने का बहुत प्रयास किया परन्तु, सफल नहीं हो सका।" इसके विपरीत द्रष्टा भाव विकसित कीजिए। केवल मन को निरपेक्ष भाव से देखते हुए जहाँ तक संभव हो ऋणात्मक विचारों को रोकने का प्रयास कीजिए।

दूसरा कदम है प्रतिस्थापन अर्थात् एक भाव के बदले ठीक उसके विपरीत भाव विकसित करना। यदि किसी कारण से आपमें क्रोध की भावना प्रबल हो रही हो तो उसके स्थान पर अपने मन के समक्ष प्रेम, क्षमा और सहानुभूति के भाव प्रस्तुत करने का प्रयास कीजिए। इन महान आदर्शों के विषय में विचार कीजिए और इस प्रकार क्रोध के स्थान पर प्रेम की भावना प्रबल कीजिए। जब कभी भी आपमें क्रोध के भाव उत्पन्न हों आप अपने मन के समक्ष संत-महात्माओं के शान्त चेहरे और स्वरूप को प्रस्तुत कीजिए। विचार कीजिए कि कैसे इन लोगों ने क्रोध पर विजय पायी है। आप उनकी संतान हैं इसलिए उनकी क्षमाशीलता

दया, करुणा, शान्ति और विनम्रता आपको विरासत में प्राप्त हुई है। इसलिए आप प्रेम की जीवन्त प्रतिमूर्ति हैं।

जैसे-जैसे आप अपने आन्तरिक और स्वाभाविक सद्‌गुणों को पहचानने लगेंगे वसे-वैसे प्रतिपक्ष भावना के अन्तिम चरण—रूपान्तरण में सफल होने लगते है। क्रोध का प्रेम में, अहंकार का नम्रता में, लोभ का उदारता में और क्रूरता का करुणा में रूपान्तरण हो जाता है।

पहचान, द्रष्टाभाव से अवलोकन, प्रतिस्थापन और रूपान्तरण ये सभी प्रतिपक्ष भावना विकास के विभिन्न चरण है।

आन्तरिक रूप से आप शुभ, धनात्मक और दिव्य है। इसलिए जब ऋणात्मक वृत्ति रूपान्तरित होती है तो एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति मुक्त होती है। यही शक्ति संतों के व्यक्तित्व में आश्चर्य जनक परिवर्तन और आकर्षण उत्पन्न करती है। इसका प्रभाव भौतिक जगत के अनेक नाभकीय बमों के संयुक्त प्रभाव से भी अधिक होता है। मानव मन से ऐसी आश्चर्यजनक आध्यात्मिक शक्ति प्रकट हो सकती है जिसका प्रभाव सभी मानवीय कल्पना से परे होता है। आपको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि संसार में जितने भी परिवर्तन हो रहे है उनका कारण विचार है। ध्यान से सोचिए कि आज भी कैसे बुद्ध और जेसस के विचारों से विश्व के करोडों व्यक्ति प्रबुद्धता प्राप्त कर रहे है। ऐसा क्यों ? इसका कारण यह है कि इन महामानवों ने अपने व्यक्तित्व से काम, क्रोध, अहंकार और इसी प्रकार की अन्य वृत्तियों को पूर्णतः निर्मूल कर दिया था। निम्न मन के प्रभाव से जो स्वतंत्र होगा वह मन उतना ही अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली हो जाएगा। वैसे मन से जो शक्ति प्रसारित होगी उससे समस्त पृथ्वी का स्वरूप ही परिवर्तित हो सकता है। समस्त जगत में सत्य, शुभ और दिव्यता का प्रसार होने लगेगा। इसलिए मन को परिष्कृत करना कोई स्वार्थपूर्ण कार्य नहीं है। साधक यह नहीं सोचता कि मैं प्रबुद्धता के लिए योगाभ्यास

करता हूँ, मुझे इस संसार की कोई चिंता नहीं है।" इसके विपरीत आप योगाभ्यास इसलिए करते है कि आप मानवता की अनन्य सेवा करने को इच्छुक है तथा मानवता का सर्वश्रेष्ठ सेवक तभी बना जा सकता है जब कि आपको अपने मन और इन्द्रियों पर पूर्ण नियत्रण हो !

मनोजय की आंतरिक साधनायें

मन को नियंत्रित करने का एक और महत्वपूर्ण तथा उन्नत साधन है —धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास। प्रतिदिन आपको धारणा और ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। प्रात और सध्या ध्यानाभ्यास के लिए सर्वोत्तम समय है। परन्तु यदि आपको उपरोक्त समय में ध्यान का अवसर नहीं मिल पाता है तो किसी भी समय ध्यान किया जा सकता है। नहीं ध्यान करने से अच्छा है कि जो भी समय आप को मिले उसमें ध्यान करें।

किसी स्थिर आसन में बैठ जाइए। अपने को मूर्ति की तरह स्थिर रखिए। कोई एक वस्तु जैसे—मोमबत्ती का लव, फूल, सूर्य, चन्द्रमा या किसी भो देवी-देवता का चित्र अपने सामने रखिए। निर्निमेष दृष्टि से उस वस्तु को अपलक देखते रहिए। आँखे बन्द कर उक्त वस्तु को मन में जितने समय तक देख सकते है देखिये। यही धारणा का अभ्यास है। धारणा दो प्रकार की होती है। जब किसी वस्तु को मानसिक रूप से आप देखते है तो इसे स्थूल धारणा कहा जाता है। जब आप कुछ उन्नति कर लेते हैं तो प्रेम, आनन्द, करुणा, दया इत्यादि अन्य भावनाओं पर भावात्मक धारणा का अभ्यास कर सकते हैं। चूँकि भावात्मक धारणा का अभ्यास करना कठिन है इसलिए अधिकांश लोगों को यही परामर्श दिया जाता है कि आरंभ में वे स्थूल धारणा का अभ्यास करें और बाद में अपने स्थूल धारणा को भावात्मक धारणा में परिवर्तित करें। उदाहरण के लिये जब आप अपने मन में चन्द्रमा की स्पष्ट और स्थिर छवि बनाए रखने में सफल हो जाते हैं तो आप धीरे-धीरे अपने इस अभ्यास के समय यह भावना विकसित कीजिए कि चन्द्रमा परमानन्द का प्रतीक है।

इस प्रकार आप स्थूल धारणा के अभ्यास से मन को भावात्मक धारणा तक ले जाइए। धारणा ही ध्यान बन जाती है। जब निर्बाध रूप से धारणा की निरन्तरता बनी रहती है तो वही ध्यान कहा जाता है। जब ध्यान अत्यन्त गहन हो जाता है तो आप अहंकारिक चेतना और ध्यान की वस्तु से परे हो जाते हैं। इस प्रकार और गहरे ध्यान के द्वारा आप समाधि में प्रवेश करते हैं। सभी गुह्य रहस्यों और आध्यात्मिक गुत्थियों के उद्‌घाटन का क्षेत्र समाधि ही है। आप अपने विषय में जो महान और शाश्वत सत्य है उसे ज्ञात करते हैं। आप अनुभव करते हैं कि आप कोई व्यक्ति विशेष नहीं बल्कि सार्वभौमिक आत्मा है। समाधि के माध्यम से ही आप अपनी वैयक्तिकता के विषय में बनाई गई धारणाओं को स्वप्न के रूप में अनुभव करते हैं तथा आपका विवेक अन्तः प्रज्ञा में रूपांतरित हो जाता है। इस महान सत्य का अनुभव करना ही प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष महान और दिव्य लक्ष्य है।

ध्यान मे चाहे आप आधा घन्टा बैठें या एक घन्टा। परन्तु आपके सामने लक्ष्य यह है कि आप समाधि की अनासक्त भावना को अपने दैनिक जीवन के कार्य सम्पादन में भी बनाए रखें। आन्तरिक रूप से यह आप समझ लीजिए कि—"मैं यह शरीर नहीं हूँ। मैं संसार की इन गतिविधियों में संलग्न नहीं हूँ। मैं केवल द्रष्टा हूँ।" जब आप इन बातों को अच्छी तरह समझ कर ऐसी भावना बनाए रखने में सफल हो जाते हैं तो आप निरन्तर समाधि की ही स्थिति में होते है। इसे सहज समाधि कहा जाता है। यह मन की एक ऐसी स्थिति है जिसमें आप सभी भ्रमों और माया से मुक्त रहते है। जब आप इस अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं तो आप सन्त और अत्यन्त उन्नत व्यक्तित्व से सम्पन्न हो जाते हैं। आप वाह्य रूप से अत्यन्त क्रियाशील और अपने कर्तव्यों के पालन में व्यस्त रह सकते हैं। परन्तु, पल भर के प्रयास में आप स्वयं को संसार से हटाकर अन्तर्मुख कर सकते हैं क्योंकि आन्तरिक रूप से आप अन्तर्मुखी हैं। आप ऐसे हस की तरह हैं जो सरोवर में तैर तो रहा है परन्तु, किसी पल अपने पंखों को झाड़ पानी की प्रत्येक बूँद गिरा कर उड़ सकता है। आप का वास्तविक निवास सरोवर नहीं है।

मनोजय प्राप्त करने के वाह्य साधन

धारणा, ध्यान और समाधि को अन्तरङ्ग साधना कहा जाता है। मन को नियंत्रित करने के लिए ये उन्नत और आन्तरिक विधियाँ है। इन साधनाओं को प्रभावशाली और तीव्र करने के लिए राजयोग में अन्य कई सहायक साधनायें भी है जो मन और शरीर को उन्नत साधनाओं के लिए अनुकूल बनाती हैं। इन्हें वहिरङ्ग साधना या मनोजय की अपरोक्ष साधना कहते है। पहला है यम। इसके अन्तर्गत सत्य, अहिसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह ये पाँच गुण सम्मिलित है। दूसरा है नियम जिसके अन्तर्गत शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान सम्मिलित है। यम में हिंसा नहीं करो, चोरी नहीं करो, जैसे निषेधात्मक निर्देश दिये गये हैं जबकि नियम में यह बताया गया है कि आपको क्या करना चाहिए। जैसे संतोष का अभ्यास कीजिए, स्वाध्याय कीजिए, ईश्वर नाम का जप कीजिए, ईश्वर के प्रति समर्पण उत्पन्न कीजिए इत्यादि। यम-नियम राजयोग के अन्य पक्षों के अभ्यास के लिए आवश्यक मानसिक पृष्ठभूमि और आधार का निर्माण करते हैं।

तीसरी साधना आसन कहलाती है। शरीर में कफ, पित्त, वायु में संतुलन, प्रखर स्वास्थ्य और सशक्त तन्त्रिकातंत्र विकसित करने के लिए आसन हठयोग द्वारा प्रतिपादित विशेष प्रकार के मनोशारीरिक व्यायाम हैं। कुछ आसनों का नियम पूर्वक अभ्यास करना चाहिए। किसी योगी को सर के बल खड़े हुए देख या कठिन आसन करते देख कर भयभीत नहीं होइए। यह बात अच्छी तरह जान लीजिए कि कठिन आसन ही प्रभाव शाली नहीं होते हैं। सोकर शरीर को तनाव रहित करना भी एक आसन है जो शवासन के नाम से विख्यात है।

शरीर, मन और तंत्रिकातंत्र को तनाव रहित और पूर्ण विश्राम प्रदान करने के लिए इन आसनों का अभ्यास कोई कर सकता है। जब आपका मन पूर्ण शिथिल और तनाव रहित होता है तो उन्नत स्तर पर क्रियाशील हो जाता है। जब आपका शरीर पूर्ण विश्रान्ति की स्थिति में नहीं होता तो मन भी तनाव युक्त और बोझिल रहता है। यदि आप

सच्चे अर्थों में स्वस्थ है तो आपको यह अनुभव नहीं होता कि आपका शरीर किस स्थिति में है। यदि आपको अपने शरीर की चेतना निरन्तर बनी रहती है तो आपका मन निम्नस्तर पर क्रियाशील रहता है। इस लिए अपने आहार-विहार तथा दैनिक जीवन की क्रियाओं को इस प्रकार सुनियोजित कीजिए जिससे आपका स्वास्थ्य समुन्नत और प्रखर बनें।

आदर्श स्वास्थ्य असंभव है। क्योंकि मानव शरीर निरन्तर परिवर्तित हो रहा है। सभी दृष्टिकोण से एक आदर्श शरीर और स्वास्थ्य प्राप्त करना आपका लक्ष्य नहीं। आप में किसी हाथी का बल हो सकता है या आप किसी अन्य प्राणी की तरह शक्तिशाली बन सकते है। परन्तु वैसे शारीरिक गठन से आपका विकास उन प्राणियों के अपने विकास के स्तर का ही होगा। आसन का लक्ष्य यही है कि आपका शरीर इस प्रकार का स्वास्थ्य प्राप्त करे कि उसकी चिन्ता किये बिना मन का आध्यात्मिक विकास होता रहे। यदि आसनों का अभ्यास आपने अच्छी तरह किया है तो ध्यान में आप अधिक समय तक स्थिर होकर बैठ सकते हैं। लम्बे समय तक बैठने में आपको कोई असुविधा नही होगी। आसनों के नियमित अभ्यास से यह संभव है।

मनोजय के लिए चौथी बाह्य साधना प्राणायाम कहलाती है। प्राणों को नियंत्रित करने का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण विज्ञान है। प्राणों का सम्बन्ध स्वॉस से होता है। स्वाँसों के नियंत्रण से आप प्राणों पर नियंत्रण कर सकते हैं। ये प्राण मन से सम्बन्धित है।

पाँचवी साधना प्रत्याहार (इन्द्रियों को अन्मुर्ख करना) है। जिस प्रकार रानी मक्खी के पीछे अन्य मधुमक्खियाँ चलती हैं उसी तरह से राज योग यह घोषित करता है कि इन्द्रियाँ चित्त का अनुसरण करती हैं। जब मन बहिर्मुख हो जाता है तो इन्द्रियाँ भी अनियंत्रित होकर सांसारिक वस्तुओं की ओर आकृष्ट होने लगती हैं। यदि आप का मन विक्षिप्त (कई दिशाओं में दौडता) है तो आप शांत गुफा में बैठे हुए भी उसके कोने से उठती हुई अनेक प्रकार की आवाजों को सुनने लगेंगे। आवाज वास्तविक या अवास्तविक हो सकती है। वहाँ मच्छड़, झिंगुर

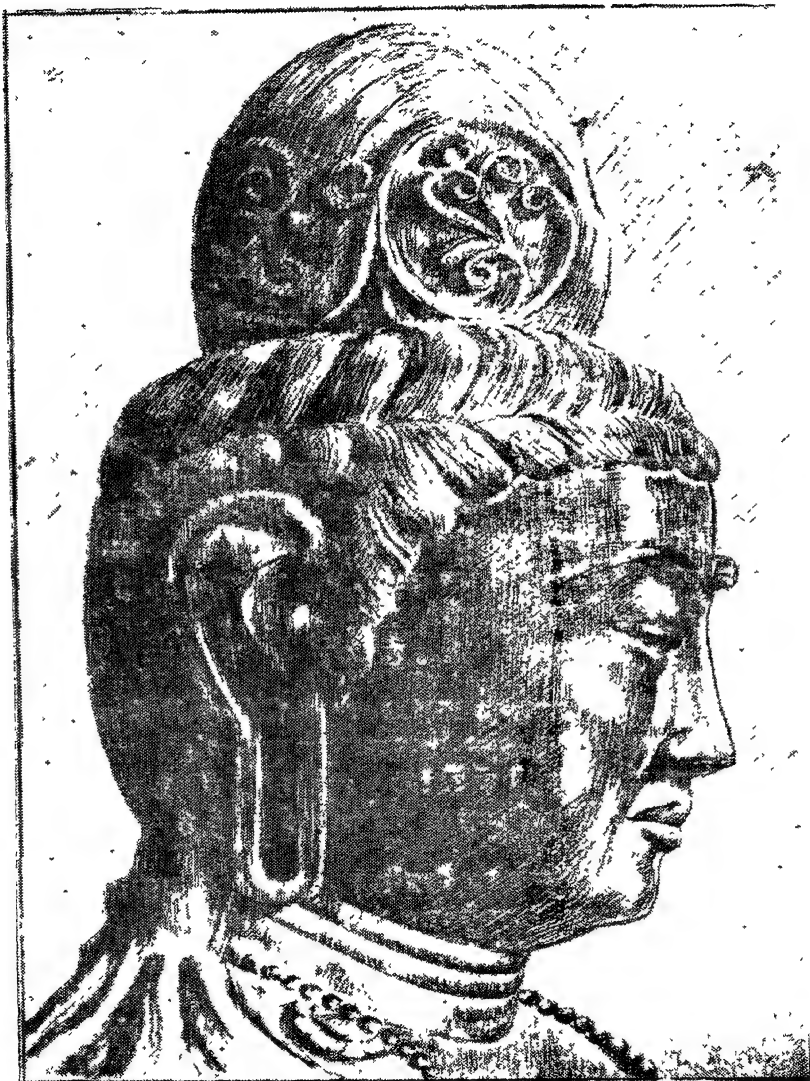
या तेलचट्टे कुछ भी हो सकते हैं। इसके विपरीत यदि आपका मन किसी आनन्ददायक वस्तु अथवा विस्तार पर केन्द्रित है तो भीड़ भरे विशाल शहर के शोर-गुल में रहकर भी आपको पूर्ण शान्ति और निर-भ्रता का अनुभव होगा।

धारणा, ध्यान और समाधि में उन्नति करने के लिए उपरोक्त वर्णित पाँच साधनायें हैं। वहिरङ्ग और अन्तरङ्ग साधना मिलकर राजयोग अभ्यास का आधार प्रस्तुत करती हैं।

इसके अतिरिक्त राजयोग उद्घोषित करता है कि—अभ्यास और वैराग्य द्वारा मन को नियंत्रित किया जा सकता है। बार-बार प्रयास ही अभ्यास और भौतिक वस्तुओं से विरक्ति वैराग्य है। अभ्यास वैराग्य की सहायता से योगी समाधि के उच्च शिखर पर चढ़ता है और आत्मा की अन्त:प्रज्ञिक अनुभूति प्राप्त करता है। परिणामत: वह जीवन मुक्त हो जाता है। वह जगत के कल्याण के लिए ही कार्य करता है। यद्यपि वह निरन्तर क्रियाशील होता है फिर भी वह सभी प्रकार के कर्म-बन्धनों से मुक्त है। वह कष्टों से रहित होता है और मरने के बाद पुनर्जन्म नहीं लेता। आपको योगाभ्यास से यही आदर्श प्राप्त करना है।

ईश्वर का अनन्त आशीर्वाद आप सबों को प्राप्त हो !





भगवान बुद्ध

२

प्रेम-पथ

आज का विषय है भक्ति-योग। अपने पिछले व्याख्यान में राज-योग अर्थात् मन तथा उसको नियंत्रित करने के विषय में मैंने चर्चा की थी। आज का विषय संसार के सभी धर्मों का केन्द्र और लक्ष्य—प्रेम का पथ और ईश्वर से प्रेम प्राप्त करने का है।

मानव अपने जीवन में कोई ऐसी वस्तु प्राप्त करना चाहता है जो उसे पूरी तरह संतुष्ट कर सके तथा उसे आनन्द में डुबो दे। इसके साथ-साथ जीवन में दूसरों से प्रेम प्राप्त करने की भी एक तीव्र कामना उस रहती है। इस परमप्रिय वस्तु की खोज में व्यक्ति एक के बाद दूसरा जन्म लेता रहता है। इस संदर्भ में वस्तु से हमारा अभिप्राय अपने अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति से भी है।

परन्तु इस खोज में किसी को भी पूर्ण संतुष्टि नहीं प्राप्त होती। जो वस्तु किसी समय अत्यधिक आकर्षक और सुखद लगती है वही समय व्यतीत होते ही आकर्षणहीन और कभी-कभी तो कष्ट का कारण भी बन जाती है। यद्यपि उस वस्तु का आकर्षण बना भी रहता है फिर भी आप स्वयं परमेश्वर को प्यारे बन जाते हैं और उस वस्तु से आपका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। इस संसार में कोई भी सम्बन्ध स्थाई नहीं है। इसलिए ऐसी कोई वस्तु इस जगत में नहीं हो सकती जो कि व्यक्ति को परम संतोष और परमानन्द प्रदान कर सके। ठीक इसी प्रकार कोई

ऐसी स्थिति या व्यक्ति भी नहीं है जो आपको परम प्रिय लगे या स्वयं वह परम-प्रेम प्रदान कर सके ।

प्रेम करना और प्रेम प्राप्त करना जीवन का सारभूत अंग है । किसे प्रेम किया जाय और कैसे प्रेम प्राप्त किया जाय—जब तक आप इन शाश्वत प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करते रहेंगे तब तक आपका जीवन प्रसन्नतापूर्वक प्रगति करता रहता है। यही भक्ति-योग है। यह एक ऐसा रहस्यमय मार्ग है जो मानवीय भावनाओं की सूक्ष्मता तथा उन्हें समुन्नत करने की सन्तुलित विधि बताता है ।

व्यक्ति की भावनायें जब अत्यन्त उत्कृष्ट और पूर्ण हो जाती हैं तो अहंकेन्द्र की सीमा से ऊपर उठ कर परमात्मा से सम्बन्धित हो जातीं । आध्यात्मिक ग्रन्थों में अनेक ऐसे सन्त-महात्माओं का प्रमाण है जिन्होंने परमात्मा को समग्रता से प्रेम किया तथा परमेश्वर से शाश्वत प्रेम पाया । अधिकृत रूप से उन लोगों ने ईश्वर के साथ वार्त्तालाप के भी प्रमाण प्रस्तुत किये है तथा उन्हें परमेश्वर का सान्निध्य भी प्राप्त था । चूँकि उन लोगों ने इस लक्ष्य को अपने ही जीवन में प्राप्त किया था इसलिए अन्य व्यक्ति भी इस आदर्श को अपने जीवन में प्राप्त कर सकते हैं । इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी व्यक्ति जीवित रहता है ।

भक्ति योग के अनुसार जिस वस्तु की आप खोज कई जन्मों से करते आ रहे हैं वह निरन्तर आपके अन्तर्मन में वर्तमान है । परन्तु अहंकार-जन्य राग-द्वेष, आसक्ति और काम, क्रोध, लोभ जंसी अन्य निम्नगामी वृत्तियों के अवरोध से व्यक्ति इस दिव्य उपस्थिति का अनुभव नहीं कर पाता है ।

हम सभी इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि चुम्बक की ओर लौहकण आकर्षित होते हैं । मान लीजिए की चुम्बक और लोहे के बीच कोई अवरोध उपस्थित है तो इस स्थिति में यद्यपि चुम्बक अपने गुण के अनुसार लोहे को अकर्षित करता अवश्य है परन्तु लौहकणों में कोई गति नहीं होती है । बीच का अवरोध हटते ही लौहकण स्वाभाविक एवं सहज रूप से ही चुम्बक की ओर आकृष्ट हो जाते हैं । ठीक

इसी प्रकार अहं चेतना के द्वारा निर्मित मानसिक अवरोधों को जब आप समाप्त कर देते हैं तो ईश्वराकर्षण और ईश्वरभक्ति के प्रभावों को अनुभव करने लगेगे।

भक्ति क्या है ?

सर्वप्रथम मैं ईश्वर भक्ति की परिभाषा देना चाहूँगा। भक्ति योग के एक महान् प्रणेता और गुरु महर्षि नारद हैं। इनकी भक्ति अतुलनीय एवं अनन्त है। भक्ति साधना से सम्बन्धित 'नारद भक्ति सूत्र' एक अत्यन्त प्रामाणिक और अधिकृत ग्रन्थ है। इसमें भक्ति के विषय में विभिन्न प्रकार के रहस्यों को उद्घाटित किया गया है। इस पुस्तक के दूसरे सूत्र में नारद महर्षि घोषित करते हैं :—

"सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा।"

अर्थात् परमात्मा के प्रक्ति परम प्रेम ही भति का यथार्थ स्वरूप है। नारद जी ने भक्ति की यही परिभाषा दी है।

एक दूसरे महान् ऋषि जिन्हें शाण्डिल्य के नाम से जाना जाता है ने भी भक्ति से सम्बन्धित एक लघु ग्रन्थ लिखा है जिसे "शाण्डिल्य भक्ति सूत्र" कहा जाता है। भक्ति की परिभाषा देते हुए महर्षि शाण्डिल्य ने लिखा है :—

"सा परनुरक्तिरिति ईश्वरे"

अर्थात् ईश्वर के साथ अधिकाधिक अनुरक्ति ही भक्ति है।

आसक्ति (मानवीय प्रेम) और भक्ति (ईश्वर-प्रेम) में भी भेद है। इसे अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है। मानवीय प्रेम में मन किसी वस्तु की ओर आकृष्ट हो जाता है। उस वस्तु की एक झलक से मन में अत्यन्त सुख का अनुभव होता है और व्यक्ति अपनी प्रिय वस्तु को देख कर अत्यधिक प्रसन्न हो जाता है। इसलिए वह आनन्द को अपने नियंत्रण से बाहर नहीं जाने देना चाहता। इसके लिए उसके मन में यह तीव्र कामना उठने लगती है कि वह अपने प्रिय वस्तु को चाहे जैसे भी हो

ऐसी स्थिति या व्यक्ति भी नही है जो आपको परम प्रिय लगे या स्वयं वह परम-प्रेम प्रदान कर सके।

प्रेम करना और प्रेम प्राप्त करना जीवन का सारभूत अंग है। किसे प्रेम किया जाय और कैसे प्रेम प्राप्त किया जाय—जब तक आप इन शाश्वत प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करते रहेंगे तब तक आपका जीवन प्रसन्नतापूर्वक प्रगति करता रहता है। यही भक्ति-योग है। यह एक ऐसा रहस्यमय मार्ग है जो मानवीय भावनाओं की सूक्ष्मता तथा उन्हें समुन्नत करने की सन्तुलित विधि बताता है।

व्यक्ति की भावनाये जब अत्यन्त उत्कृष्ट और पूर्ण हो जाती हैं तो अहंकेन्द्र की सीमा से ऊपर उठ कर परमात्मा से सम्बन्धित हो जातीं। आध्यात्मिक ग्रन्थों में अनेक ऐसे सन्त-महात्माओं का प्रमाण है जिन्होंने परमात्मा को समग्रता से प्रेम किया तथा परमेश्वर से शाश्वत प्रेम पाया। अधिकृत रूप से उन लोगों ने ईश्वर के साथ वार्त्तालाप के भी प्रमाण प्रस्तुत किये है तथा उन्हें परमेश्वर का सान्निध्य भी प्राप्त था। चूँकि उन लोगों ने इस लक्ष्य को अपने ही जीवन में प्राप्त किया था इसलिए अन्य व्यक्ति भी इस आदर्श को अपने जीवन में प्राप्त कर सकते है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी व्यक्ति जीवित रहता है।

भक्ति योग के अनुसार जिस वस्तु की आप खोज कई जन्मों से करते आ रहे हैं वह निरन्तर आपके अन्तर्मन में वर्तमान है। परन्तु अहंकार-जन्य राग-द्वेष, आसक्ति और काम, क्रोध, लोभ जंसी अन्य निम्नगामी वृत्तियों के अवरोध से व्यक्ति इस दिव्य उपस्थिति का अनुभव नहीं कर पाता है।

हम सभी इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि चुम्बक की ओर लौहकण आकर्षित होते हैं। मान लीजिए की चुम्बक और लोहे के बीच कोई अवरोध उपस्थित है तो इस स्थिति में यद्यपि चुम्बक अपने गुण के अनुसार लोहे को अकर्षित करता अवश्य है परन्तु लौहकणों में कोई गति नहीं होती है। बीच का अवरोध हटते ही लौहकण स्वाभाविक एवं सहज रूप से ही चुम्बक की ओर आकृष्ट हो जाते हैं। ठीक

इसी प्रकार अहं चेतना के द्वारा निर्मित मानसिक अवरोधों को जब आप समाप्त कर देते हैं तो ईश्वराकर्षण और ईश्वरभक्ति के प्रभावों को अनुभव करने लगेंगे।

भक्ति क्या है ?

सर्वप्रथम मैं ईश्वर भक्ति की परिभाषा देना चाहूँगा। भक्ति योग के एक महान् प्रणेता और गुरु महर्षि नारद हैं। इनकी भक्ति अतुलनीय एवं अनन्त है। भक्ति साधना से सम्बन्धित 'नारद भक्ति सूत्र' एक अत्यन्त प्रामाणिक और अधिकृत ग्रन्थ है। इसमें भक्ति के विषय में विभिन्न प्रकार के रहस्यों को उद्घाटित किया गया है। इस पुस्तक के दूसरे सूत्र में नारद महर्षि घोषित करते हैं :—

"सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा।"

अर्थात् परमात्मा के प्रक्ति परम प्रेम ही भति का यथार्थ स्वरूप है। नारद जी ने भक्ति की यही परिभाषा दी है।

एक दूसरे महान् ऋषि जिन्हें शाण्डिल्य के नाम से जाना जाता है ने भी भक्ति से सम्बन्धित एक लघु ग्रन्थ लिखा है जिसे "शाण्डिल्य भक्ति सूत्र" कहा जाता है। भक्ति की परिभाषा देते हुए महर्षि शाण्डिल्य ने लिखा है :—

"सा परनुरक्तिरिति ईश्वरे"

अर्थात् ईश्वर के साथ अधिकाधिक अनुरक्ति ही भक्ति है।

आसक्ति (मानवीय प्रेम) और भक्ति (ईश्वर-प्रेम) में भी भेद है। इसे अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है। मानवीय प्रेम में मन किसी वस्तु की ओर आकृष्ट हो जाता है। उस वस्तु की एक झलक से मन में अत्यन्त सुख का अनुभव होता है और व्यक्ति अपनी प्रिय वस्तु को देख कर अत्यधिक प्रसन्न हो जाता है। इसलिए वह आनन्द को अपने नियंत्रण से बाहर नहीं जाने देना चाहता। इसके लिए उसके मन में यह तीव्र कामना उठने लगती है कि वह अपने प्रिय वस्तु को चाहे जैसे भी हो

अपने पास रखे। परन्तु आनन्द की जो झलक उसे मिलती है वह वास्तव में उस वस्तु में निहित नहीं होती। परन्तु अविद्या (अज्ञान) तथा मानव मन की परिसीमाओं के कारण व्यक्ति यह समझने लगता है कि वास्तव में आनन्द उस वस्तु से ही प्राप्त हो रहा है। प्रेमानन्द की झलक बनाये रखने के लिए व्यक्ति वस्तु की ओर आकृष्ट हो जाता है। परन्तु कुछ दिनों के पश्चात् उसकी उपरोक्त दृष्टि परिवर्तित हो जाती है और केवल आसक्ति का दबाव ही बढ़ता जाता है। इसे राग कहा जाता है जो राजयोग में वर्णित एक प्रकार का क्लेश है। इस प्रकार की धारणा विकसित नही करनी चाहिए।

इसके विपरीत भक्ति योग में आपको एक दूसरे ही प्रकार के आकर्षण की ओर आकृष्ट होना होना है। चित्तशुद्धि और सत्सङ्ग के कारण आपका मन दिव्य परमात्मा की महिमा और सुन्दरता की झलक लेने लगता है। यदि आपके मन को दिव्य माधुर्य का थोडा भी रसास्वादन करने का अवसर मिलता है तो यह सांसारिक वस्तुओं से अनासक्त हो जाता है।

जब आप भौतिक वस्तुओं में आसक्त हो जाते हैं तो आपके बन्धन और अधिक बढने लगते हैं। आप अधिक से अधिक वस्तुओं पर निर्भर हो जाते हैं और समय व्यतीत होते हो प्रेम की दृष्टि समाप्त होने लगती है। जब आप ईश्वर में आसक्त हो जाते है तो भौतिक चिन्ताओं का समस्त भार समाप्त हो जाता है और सुख के क्षितिज का अधिकाधिक विस्तार होने लगता है। ईश्वर-भक्ति का यही प्रभाव है। एक बार ईश्वर-भक्ति के पथ पर आप कदम रख देते हैं तो ईश्वर से आपकी निकटता उतरोत्तर बढती जाती है और आपको अमित आनन्द का अनुभव होने लगता है। भौतिक वस्तुओं में आपको कोई आनन्द नही दिखाई पड़ता।

इसके अतिरिक्त भौतिक वस्तुओं के मूल में वास्तव में एक मात्र परमात्मा ही विद्यमान है। बृहदारण्यकोपनिषद् में इस तथ्य की ओर इगित किया गया है। जब महर्षि याज्ञवल्क्य संसार से विरक्त हो अपनी समस्त सम्पत्ति को अपने परिवार के लोगों में बाँटने लगे तो उनकी पत्नी

ने प्रश्न किया—"आप मुझे यह भौतिक सम्पत्ति क्यों दे रहे है ? इस धन से तो हमें अमरत्व नही प्राप्त हो सकता। आप मुझे ऐसी सम्पत्ति क्यों नहीं देते हैं जिससे अमरत्व प्राप्त हो ? मुझे ऐसा ज्ञान क्यों नहीं दे रहें है जिससे मुक्ति मिले ?" याज्ञवल्यक्य ने शांतिपूर्वक कहा कि वे निश्चित रूप से मुक्तिदायक ज्ञान प्रदान करगे। इस प्रकार उन्होंने अपना महत्त्वपूर्ण उपदेश आरम्भ किया :—

आत्मानस्तु कामाय सर्व प्रिय भवति।

आत्मा के कारण ही सब कुछ प्रिय लगता है।"

आपके अन्दर वर्तमान अन्तरात्मा ही सर्वोच्च प्रेम की वस्तु है। अन्य और वस्तुयें आपको उसी सीमा तक प्रिय लगती हैं जितनी सीमा तक आप उसे अपनी अन्तरात्मा के साथ सम्बन्धित होने की कल्पना करते है। जितनी सीमा तक आप स्वयं की छवि उस वस्तु में प्रतिबिम्बित देखते हैं उतनी सीमा तक उक्त वस्तु आप को अच्छी लगती है। यदि अपनी प्रिय वस्तु मे आप स्वयं का प्रतिबिम्बित स्वरूप नहीं देखते है तो वह वस्तु आपके लिए महत्त्वहीन हो जाती है। आपके अन्दर जो गहरी वास्तविकता है वह वस्तुत: परमतत्त्व ही है। इसलिए अपने-आप के प्रति आपका प्रेम वास्तव में परमात्मा के प्रति प्रेम का ही एक परिवर्तित रूप है। इसलिए आपकी अन्तरात्मा अनन्त प्रेम की जीवन्त प्रतिमूर्त्ति है।

वेदान्त इस बात की भी घोषणा करता है कि आपकी अन्तरात्मा अमृत का अनन्त सागर है। अत: इसका स्वरूप अमित माधुर्यपूर्ण है। इस आत्मा के एक स्वरूप को आनन्द भी कहा गया है। वही परमात्मा मानव-हृदय में भी विद्यमान है। परन्तु काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और अन्य कई प्रकार के मानसिक अवरोधों के कारण परमात्मा की दिव्य विद्यमानता की यह चेतना विस्मृत हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष यह एक लक्ष्य है कि इन सारे अवरोधों को विनष्ट कर हृदय में आलोड़ित ईश्वरभक्ति और दिव्य प्रेम के सागर को उद्घाटित करें। इस उद्घाटन से उत्पन्न अमित आनंद की अनुभूति मानवीय कल्पना से परे है।

पञ्च भाव

भक्ति-योग की कुछ महत्वपूर्ण बातों की व्याख्या करना आवश्यक है। अपने विकास के स्तर के अनुसार साधक ईश्वर के प्रति निम्नांकित पाँच भावों में से कोई एक भाव विकसित करता है।

पहले को "शांत भाव" कहा जाता है। शांत का अर्थ यह है कि आप परमेश्वर को केवल सहज रूप से प्रेम करते हैं और आपकी भक्ति का कोई मूर्त्त स्वरूप नहीं होता। आप स्वयं नही जानते कि आप ईश्वर को किस रूप में प्रेम कर रहे हैं। अतः यह एक ऐसी अव्यक्त, अमूर्त्त और गुप्त अवस्था है जिसे सही रूप मे वर्णित नहीं किया जा सकता। यही शांत भाव है।

इस प्रकार की भक्ति करने वालों में प्रमुख महाभारत के महारथी भीष्म आते हैं। जिन्होंने भी महाभारत का अध्ययन किया है उन्हें अच्छी तरह ज्ञात है कि बिना किसी बाह्य अभिव्यक्ति के भीष्म भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनका प्रेम गुप्त, शांत और उनके हृदय में ही छुपा था।

दूसरी भावना जिसे आप विकसित कर सकते हैं वह है "दास्यभाव" अर्थात सेवक की भावना। "मैं परमतमा के हाथों में एक माध्यम मात्र हूँ। मै केवल सेवक हूँ।" जेसस क्राइस्ट इसी भावना से अभिप्रेरित थे। उनका कहना था—"जिस पिता ने मुझे भेजा है मैं उसी की इच्छा के अनुसार कार्य कर रहा हूँ।"

जेसस में दो भावनायें देखी जाती हैं। एक तो दास्यभाव और दूसरी वात्सल्य भावना जिसमें ईश्वर को पिता या पुत्र के रूप में मानकर प्रेम किया जाता है।

भक्ति-योग में इस बात पर अधिक बल दिया गया है कि भक्त को परमेश्वर के प्रति ऐसा प्रेम उत्पन्न करना चाहिए जैसा माता अपने बच्चे के प्रति करती है। भक्ति-योग के अनेक ग्रन्थों में अपने ढङ्ग की इस अद्भुत भावना का विस्तृत वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवत् पुराण में कृष्ण की कथा है। श्रीकृष्ण जो परमात्मा हैं एक बालक के रूप में

अवतरित होते हैं और यशोदा उनकी दिव्य बाललीलाओं के आनन्द से अभिभूत होती है।

इस कथा का एक अत्यन्त गंभीर अर्थ है। मातृ-प्रेम में किसी प्रकार की प्रत्याशा नहीं होती। प्रेम करती हुई माता कभी यह आशा नहीं करती कि चोरों से बालक उसकी रक्षा करेगा या उसके लिए धन अर्जित करेगा। इसके विपरीत माता अपने प्रेम को प्रकट करती हुई विभिन्न प्रकार के कष्ट सहन करती है तथा प्रत्येक परिस्थिति में यही चाहती है कि वह अपने पुत्र को इसी प्रकार से प्रेम करती रहे। वात्सल्य प्रेम की यही मिठास है तथा इस रहस्य को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है।

ईश्वर-भक्ति की प्रक्रिया में कोई व्यक्ति किसी स्वार्थ-पूर्ति के उद्देश्य से अपनी आराधना आरंभ कर सकता है। परन्तु जब वह अपनी साधना में बढता जाता है तो वह ईश्वर-भक्ति की मधुरिमा में इतना तल्लीन हो जाता है कि उसके मन में ईश्वर-दर्शन के अतिरिक्त अन्य कोई कामना शेष ही नहीं रहती। ईश्वर-दर्शन इस मानव-जीवन की सर्वोत्तम अनुभूति है।

इस संसार की कई नश्वर वस्तुओं के लिए मानव मन तड़पता रहता है। क्षणिक वस्तुओं की चमक में मानव-भावनायें उलझी रहती हैं। नाशवान वस्तुओं के लिए अनेक बार अश्रु वर्षाये गए हैं, अनेक बार कष्ट उठाये गए हैं, कई प्रकार के दुःखों को सहा गया है तथा अनेक प्रकार की व्यग्रता और चिन्ताओं के ताप को झेला गया है। परन्तु अपने-आप से पूछिए कि "क्या कभी मैंने अपने अन्तरात्मा–जो हमारा मूल आधार और शाश्वत सम्बल है–के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए कोई प्रयास किया है?" उसका ही प्रेम संसार की समस्त वस्तुओं में प्रतिबिम्बित होता है तथा वही समस्त सृष्टि की एक मात्र वास्तविकता है। जब इस प्रकार का प्रेम उत्पन्न होता है तो उसे 'वात्सल्य प्रेम' कहा जाता है अर्थात ऐसा प्रेम जैसा एक माता अपने बच्चे के साथ करती है।

अगले भाव को 'सख्य' या मैत्री भाव कहा जाता है। जब आपकी भक्ति उन्नत स्तर की हो जाती है तो आप एक ऐसी भावना विकसित कर लेते है कि परमात्मा आपका सखा है। इस प्रकार का भक्त ईश्वर से कुछ कार्य करने का भी आग्रह करता है। उसमें एक विशेष प्रकार का आत्मविश्वास उत्पन्न हो जाता है—"ईश्वर मेरा है और मैं उससे कुछ भी करवा सकता हूँ।" इस अवस्था में भक्त की मानसिक स्थिति इतनी उन्नत हो जाती है कि वह जो कुछ भी कामना करता है वह ईश्वरेच्छा के अनुकूल ही होता है। उसका हृदय इतना शुद्ध हो जाता है कि वह ईश्वरीय इच्छा को ही पूरा करने की कामना करता है। उस की क्रियायें ईश्वरेच्छा के अनुरूप होती है।

अन्तिम है—'माधुर्य भाव' (मधुर प्रेम) जो सांसारिक भाषा में केवल मधुर मुस्कान के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। इस भाव की तुलना प्रेमी और प्रेयसी के मध्य होने वाले अत्यन्त तीव्र प्रेम से की गई है। इसी प्रकार का प्रेम जिसमें ससार की अन्य सभी वस्तुओं को त्याग दिया जाता है, किसी की परवाह नहीं की जाती है, परमात्मा के साथ विकसित हो जाता है।

इसे समझने के लिए एक कथा कही जाती है। संध्या समय किसी एकान्त स्थान में एक संत तपस्या कर रहे थे। उसी समय एक युवती अनजान में ही साधक के प्रार्थना-स्थल पर बिछी चादर को कुचलती हुई चली गई। महात्माजी को बहुत क्रोध हुआ और उन्होंने औरत को डाँटते हुए कहा—"मैने इस पवित्र चादर को पवित्र पूजा और प्रार्थना के लिए बिछाया है और तुमने इसे पैरों से क्यों रौंद डाला?" संत को फटकारते हुए युवती बोली—"मै तो इस भौतिक प्रेम, जिसे तुम नश्वर और क्षणिक कहते हो, के प्रभाव में आकर अँधी हो गई हूँ। यदि सांसारिक प्रेम के प्रभाव में मैं अँधी हो गई हूँ तो आध्यात्मिक प्रेम का तुम्हारे ऊपर क्या प्रभाव पड़ा है? अपने आध्यात्मिक प्रेम (भक्ति) से प्रभावित होकर तुम अपनी चादर और मेरा दौड़ना ही देख सके हो?" ऐसा कहते हुए वह आगे बढ़ गई।

इस घटना से महात्मा जी को एक आध्यात्मिक संदेश प्राप्त हो गया। उन्हें अपनी साधना की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो गया तथा वे जान गये कि उन्होंने अभी तक ईश्वर-भक्ति की उन्नत स्थिति नहीं प्राप्त की है। सभी तपस्याओं का लक्ष्य परमात्मा के साथ अनन्य प्रेम अभी नहीं मिला है।

यह उपाख्यान इस बात का संदेश देता है कि मन में ईश्वर-भक्ति के विकसित होते ही सभी प्रकार की पृथकता तथा द्वैत भावनायें समाप्त हो जाती हैं। एक पुराने सत कवि की अभिव्यक्ति है कि—"मैं अपने प्रियतय की सुन्दरता देखने जब निकला तो हमें सर्वत्र ही उसकी सुन्दरता दिखाई पड़ने लगी। इतना ही नहीं, मैं स्वयं भी उसकी सुन्दरता से ओत-प्रोत होकर उसका ही रूप हो गया। मैं और वह दोनों एक हो गए।"

ईश्वर-भक्ति की चरम अवस्था यही है। इस अनुभव के रोमाञ्च की कल्पना कीजिए। इसकी तुलता मानव की सर्वोच्च भावना, जो प्रेम की छाया के पीछे भाग रही है, से कीजिए। प्रेम की परछाई का पीछा करने से आपकी भावनायें अत्यन्त उन्नत स्थिति में पहुँच जाती हैं परन्तु इनका अन्त भ्रम, निराशा, दुःख और उदासी में होता है।

इसके विपरीत आप अपने हृदय में विकसित हो रही दिव्य प्रेम की गरिमा की कल्पना कीजिए। दिव्यता की एक झलक व्यक्ति को पागल बना देती है। पागल से हमारा अभिप्राय साधारण पागल नहीं है बल्कि आध्यात्मिक रसास्वादन के पश्चात् एक रहस्यमय चेतना से है जो सामान्य चेतना से सर्वथा पृथक् एवं अभूतपूर्व है। अपने एक सूत्र में नारद महर्षि कहते हैं—"यत् ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति।" सर्वोच्च प्रेम को ज्ञात कर दिव्यानन्द से भक्त मतवाला हो जाता है। वह असीम शान्ति की अनुभूति से स्तब्ध हो जाता है और आत्मा से ही आनन्द प्राप्त करने लगता है।"

सूफी संत के विषय में एक कथा है कि ईश्वर-भक्ति में वह इतना डूब गया था कि उसे एक विचित्र प्रकार के नशे का अनुभव हो रहा

था। अपने चारों ओर जब वह देखता तो ऐसा लगता कि उसके आस-पास के सभी लोग, वस्तु एवं जीव-जन्तु सभी पीकर नशे में झूम रहे हैं। लोग उसे देखकर कहा करते कि यह संत तो स्वयं पीता नही फिर भी इसे ऐसा लग रहा है कि सारी दुनिया उसके साथ पो रही है। इसलिए एक दिन सूफी संत ने किसी मदिरालय में जाकर एक पैसे की शराब खरीदी और उसे पीकर नाचने लगा।

उसके कुछ शिष्यों ने प्रश्न किया—"आपने शराब पीनी क्यों शुरू कर दी ?" "मैंने तो शराब वास्तब में नहीं पी है। केवल एक पैसे का शराब लेकर उसे अपनी मूँछों में लगाया है जिससे लोगों को यह मालूम हो जाय कि मैं भी पीता हूँ। परन्तु मेरी मस्ती अन्दर से आती है। मैं मस्ती के लिए शराब पर निर्भर नहीं हूँ। मेरी शराब तो मेरे हृदय से निकलती है।"

भक्ति—पथ की साधनायें

भक्ति-योग में कई प्रकार की साधनाओं का वर्णन है। भक्ति दो प्रकार की होती है। एक को मुख्य-भक्ति कहते हैं। यह उच्च मानसिक शुद्धता पर आधारित है। दूसरी को गौणी-भक्ति कहते हैं जिसके लिए अनेक प्रकार की साधना करने की आवश्यकता होती है।

भक्ति-साधना का प्रथम चरण है **श्रवण**। भक्ति को सत्सङ्ग में आकर ऐसे व्यक्ति से सम्पर्क करना चाहिए जिसमें ईश्वर-भक्ति की ज्योति प्रज्वलित होती है।

भक्ति-योग से सम्बन्धित शास्त्रों और ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख आया है कि जब तक भक्ति की प्रज्वलित ज्योति के प्रत्यक्ष सम्पर्क में साधक नहीं आता तब तक उसके हृदय में भक्ति की ज्योति नहीं प्रकट हो सकती। भक्ति अग्नि के समान है। प्राचीन काल में जब लोगों के पास सलाई नहीं होती थी तो वे अपने पड़ोसी के घर जाकर जलती आग लाते थे। यदि उन्हें कोई आग की सुन्दर चित्रकारी दे तो उससे उनका काम नहीं चलेगा। ठीक इसी प्रकार जब तक आप किसी ऐसे व्यक्ति

के समीप नहीं जाते जिनके हृदय में भक्ति की अग्नि प्रज्वलित हो रही है तो आपके हृदय में भी ईश्वर भक्ति की चिनगारी नहीं उत्पन्न होगी।

इसलिए ऐसे व्यक्तियों का सत्सङ्ग करना आवश्यक है जो ईश्वर-भक्ति विकसित करने में संलग्न हैं, जो ईश्वर की ओर तीव्रता से अग्रसर हो रहे हैं, जिनके अन्दर ईश्वर की भक्ति करने की प्रेरणा है तथा जो भक्ति के दिव्य माधुर्य का रसास्वादन कर चुके हैं। भक्ति से सम्बन्धित शास्त्र यह घोषित करते हैं कि इस प्रकार का सत्सङ्ग भी विगत के पुण्य कर्मों के प्रभाव से ही प्राप्त होता है। ईश्वरीय कृपा के कारण आप ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में आते हैं जो अपने अनुभवों से, विश्वास से और दिव्य व्यक्तित्व के माध्यम से यह बताते हैं कि ईश्वर-भक्ति जैसी कोई स्थिति है तथा उसे प्राप्त करना संभव है। ऐसे प्रबुद्ध व्यक्तित्व के निर्देशन में गीता, भागवत पुराण तथा अन्य ग्रन्थ जो ईश्वर-भक्ति से सम्बन्धित हैं का अध्ययन कीजिए। भक्ति के साथ उनके उपदेशों को सुनिए। इसे 'श्रवण' कहा जाता है।

इसके बाद 'कीर्त्तन' आता है। जिन वस्तुओं से आपके मन को प्रेरणा और प्रसन्नता मिलती है वे आपको कुछ गाने को भी प्रेरित करती हैं। इसके लिए आवश्यक नहीं कि आप कोई गायक हों। प्रत्येक व्यक्ति जब प्रसन्न होता है तो कोई न कोई सुर गुनगुनाने लगता है। इसी प्रकार जब ईश्वर-भक्ति की ज्योति हृदय में उदित होने लगती है तो आप ईश्वर-भक्ति और महिमा के गीत गाने लगते है। यह एक सूक्ष्म एवं उत्कृष्ट स्थिति है।

यदि आप मन, वचन और कर्म से शुभ, सत्य और सुन्दरता की अभिव्यक्ति करते हैं तो यह ईश्वर की दिव्यता की ही अभिव्यक्ति है। अपने कर्म और व्यक्तित्व के माध्यम से आप अपने हृदय में वर्तमान दिव्य ईश्वरीय सत्ता की ही अभिपुष्टि करते हैं। आपके शुभ और सद्कर्मों को देख कर आपके आसपास के लोगों को यह विश्वास होने लगता है कि संसार में कोई न कोई दिव्य ईश्वरीय आधार विद्यमान है। इस प्रकार

आप अपने व्यक्तित्व के माध्यम से परमेश्वर का ही गुणगान क रहे है।

साधना-क्रम में साधक आरंभ में अपने मंत्र-जप का अभ्यास करता है। ईश्वर-नाम, गुण या महिमा का गान करना कीर्त्तन कहलाता है। तेरहवी-चौदहवी शताब्दी में बङ्गाल के चैतन्य महाप्रभु कीनर्त्त के महान प्रवर्त्तक हुए थे। वे कीर्त्तन करते–करते आनन्द में डूब जाते और नृत्य करने लगते थे। लोग अनायास उनकी तरफ आकृष्ट हो जाते थे। उनमें एक रहस्यमय आध्यात्मिक आकर्षण था। अपने एक भजन में चैतन्य महाप्रभु साधक की योग्यता के विषय में बताते हैं : —

तृणादपि सुनिचेता तरोरपि सहिष्णुना

अमानिना मनादेना कीर्त्तनीया सदा हरिः ॥

'साधक को घास की पत्ती से भी अधिक नम्र, वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु, अपमानितों को मान देने वाला और निरन्तर ईश्वर का गुणगान करने वाला होना चाहिए।"

ईश्वर-गुणगान का आनन्द जब प्रकट होने लगता है तो भक्त में उन्नत स्तर की नम्रता भी विकसित हो जाती है। आपको विशाल वृक्ष की तरह सहनशील होना चाहिए जो वर्षो पर्यन्त प्रकृति की विषमताओं को सहता है। आपको ऐसे लोगों को सम्मान देना चाहिए जिन्हें सम्मान नही प्राप्त होता। अपने लिए आदर पाने की कामना त्याग कर दूसरों को आदर देने की इच्छा रखनी चाहिए। यदि आप में ये सभी योग्यतायें हैं तो आपका हृदय स्वतः ही ईश्वर-नाम का कीर्त्तन करने लगेगा।

तीसरी प्रकार की भक्ति को 'स्मरण' कहा जाता है। चाहे आप कार्य में व्यस्त हों अथवा विश्राम की स्थिति में हों आपके मन को अपने हृदय में वर्तमान परमेश्वर के सान्निध्य का दिव्य आनन्द लेने के लिए कुछ पल के लिए अन्तर्मुखी होना चाहिए। आपको ऐसा अनुभव करना

चाहिए कि आप ईश्वर के मधुर प्रेम में सराबोर हैं। आपके चतुर्दिक् परमेश्वर का दिव्य आनन्द प्रसारित हो रहा है। जप, प्रर्थना, ईश्वरीय विचार और शास्त्रों के उपदेशों का चिन्तन इत्यादि 'स्मरण' के अन्तर्गत आते हैं।

चौथी भक्ति को 'अर्चना' कहा जाता है। भक्ति की परम्परागत विधि में अर्चना एक विशेष अनुष्ठान है जिसके अन्तर्गत परमेश्वर के समक्ष मंत्रोच्चारण के साथ पुष्प अर्पित किया जाता है। "परमानन्द ही ब्रह्म है।" "चेतना ही ब्रह्म है" "करुणा ही ब्रह्म है" इत्यादि कुछ विशेष वाक्य हैं जिनका उच्चारण करते हुए देवता के समक्ष पुष्प निवेदित किया जाता है। ये सभी ईश्वर के नाम हैं। ईश्वर के नाम उसके गुण के परिचायक हैं।

उन्नत दृष्टिकोण से अर्चना का अर्थ व्यक्तित्व में आध्यात्मिक गुणों का विकास है। जब आप विनम्रता, करुणा और सद्‌गुण विकसित करते हैं तो आप अपने अन्तर्यामी परमेश्वर को अद्‌भुत पुष्प ही अर्पित कर रहे हैं। यही अर्चना है जहाँ आपका समस्त जीवन पूजा की दिव्य भावना से सञ्चारित हो जाता है।

पाँचवी प्रकार की भक्ति को 'पाद-सेवन' कहा जाता है। अनुष्ठानिक दृष्टिकोण से भक्त अपने इष्ट देव के पाँव की पूजा करता है। परन्तु उन्नत दृष्टिकोण से पाद-सेवन का अर्थ ईश्वर की सेवा करना है।

भक्त यह भावना विकसित करता है कि उसने अपने सुख के लिए नहीं बल्कि ईश्वर के सुख के लिए जीवन धारण किया है। इस भावना को वह उदारता, सद्‌कर्म एवं मानवता की निःस्वार्थ सेवा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। साधक को जब कभी भी सेवा का अवसर प्राप्त होता है उसे देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न होता है। भक्त को अच्छी तरह ज्ञात है कि समस्त प्राणियों में परमेश्वर विराजमान है अतः मानवता की निःस्वार्थ सेवा के द्वारा वह परमेश्वर की ही सेवा कर रहा है। सेवा की भावना जब और उन्नत हो जाती है तो साधक अपनी देख-रेख, खाना

पीना, स्नान इत्यादि को भी ईश्वर-सेवा मानने लगता है क्योंकि ईश्वर से पृथक् भक्त का कोई अस्तित्व ही नही होता।

भक्ति-योग में सेवा और भोग इन दोनों को अलग-अलग रखा जाता है। भोग अहंकार को आनन्दित करता है। यदि आप भक्त बनना चाहते हैं तो इसे आपको त्यागना पड़ता है। आप अहंकार को प्रसन्न करने के लिए जीवित नहीं रहते। अहंकारिक संलग्नता के त्याग को ही सेवा कहा जाता है—"मेरे लिए नहीं बल्कि परमेश्वर के लिए।"

"ईश्वर को क्यों प्रसन्न करें?" भक्ति-योग का यह एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न है। आप ईश्वर को प्रसन्न कर अपनेआप प्रसन्न होना चाहते हैं। आप ईश्वर को प्रसन्न कर ईश्वरीयानन्द प्राप्त करना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त आपको और कोई अभिलाषा नही होती। प्रतोक भाषा में आपका तर्क गणित की तरह होता है। जब आप ईश्वर-भक्ति करते हैं तो ईश्वर आपके समीप आकर आपसे कहते हैं—"तुमने मेरी भक्ति बहुत अच्छी तरह की है। मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। क्या चाहते हो?" आप कहते हैं—"परमात्मन् मैं यही चाहता हूँ कि आप और अधिक प्रसन्न हों।" कुछ दिनों के बाद परमेश्वर पुन: आपके पास आकर कहते हैं—"अब मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत अधिक प्रसन्न हूँ। अब बोलो तुम्हारी इच्छा क्या है?" आप कहते हैं—"भगवन् मैं यही चाहता हूँ कि आप और भी अधिक प्रसन्न हों।" इस प्रकार भक्त की प्रसन्नता गणितीय अनुपात में बढ़ती जाती है क्योंकि वह अपने लिए कुछ नहीं चाहता है। इस प्रकार भक्त को परमानन्द का एक अत्यन्त रहस्यमय एवं रोमाञ्चकारी आयाम अनुभव होता है।

इस तथ्य को और सहज रूप से समझने के लिए एक कथा प्रचलित है। महर्षि नारद भक्तों की परीक्षा लेना चाहते थे। उनका उद्देश्य यह था कि सच्चा भक्त कौन है इसका पता लगाया जाय। इसलिए भगवान् कृष्ण और नारद ने मिलकर एक योजना बानाई। भगवान् कृष्ण ने ऐसा नाटक किया कि वे पेट दर्द से पीड़ित है। उन्होंने नारद

को यह कहकर भेजा कि उनका पेट दर्द तभी ठीक हो सकता है जब वे भक्त के पाँव पखारे हुए जल का पान करेंगे।

नारद महर्षि ने भक्तों के पास जाकर आग्रह किया कि वे अपना पैर पखार कर जल दें जिससे कि श्रीकृष्ण का पेट दर्द ठीक किया जा सके। जब नारद किसी भक्त से जाकर पैर धोकर जल माँगते तो भक्त पूछता– "आप इस जल का कया करेगे ?" नारद जब उसका उपयोग बताते तो भक्त हाथ जोड़कर कहने लगते –"महाराज अपना पैर पखार कर उसे श्रीकृष्ण को देने से तो हमें महापाप लगेगा और हमें नरक के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलेगा। मैं यह असंभव कार्य नहीं करूँगा।"

जब महर्षि नारद जल की खोज करते-करते राधा के पास पहुँचे तो राधा ने अपने दोनों पैर आगे कर दिया। ऐसा देख नारद ने मुस्कुराते हुए कहा—"क्या तुम भगवान श्रीकृष्ण को अपवित्र जल देकर नरक में जाने से नहीं डरती ?" राधा ने कहा—"मुझे लाखों नरक स्वीकार है परन्तु मैं यह कभी नहीं देख सकती कि हमारे कृष्ण दर्द और कष्ट से दुःख पा रहे हैं।"

इस उपाख्यान से आपको अहंकार को विनष्ट करने की एक अन्तर्दृष्टि मिलती है। भक्ति में आप अपने अहंकार को प्रसन्न नहीं करते बल्कि, गहन प्रेम की अवस्था में आपका अहंकार समाप्त हो जाता है।

अगली साधना है 'वन्दना' या 'पूजन करना'। भक्त को सभी प्राणियों और वस्तुओं में परमेश्वर की उपस्थिति का एहसास होने लगता है। आन्तरिक रूप से वह सबों में वर्तमान परमात्मा को नमन करता है। जो दुष्ट और दुर्जन होते है उन्हें भी वह मानसिक रूप से प्रणाम करता है। इस रहस्यमय अभ्यास से साधक अपने चतुर्दिक संसार से दिव्य और शुभ संस्कार ग्रहण करता है।

अगले दो साधनाओं (दास्य और सख्य) के विषय में पहले ही बताया जा चुका है। दास्य भाव में भक्त यह धारणा करता है कि

वह परमेश्वर का दास अथवा सेवक है। सख्य भाव से की गई भक्ति मे भषत परमेश्वर को अपना मित्र मानता है।

भक्ति साधना की नवीं विधि आत्मनिवेदन है। भक्त का अहंकार हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है और परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाता है। जीवन का यही लक्ष्य है कि व्यक्ति पूर्ण समर्पण में जीवन व्यतीत करे। अर्थात् उसके अन्दर यह चेतना बनी रहे कि अहंकार की दृष्टि से वह स्वयं कुछ नहीं बल्कि ईश्वर के साथ एक हैं तथा आपके अन्दर वही एकमात्र वास्तविकता है।

इस भावना को भक्ति योग में दासोहम्—"मैं दास हूँ" के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। ज्ञान योग में इसे ही "–सोहम्–मैं वही हूँ" की घोषणा से अभिव्यक्त किया गया है। भक्तियोग के आचार्यों ने भगवान को चोर बताया है। वे "दासोहम् से एक छोटा सा शब्द—'दा' चुरा लेते हैं तो शेष 'सोहम्' बचता है। इस कथा का अभिप्राय यह है कि भक्ति पथ पर भक्त दासोहम् की भावना से अपनी साधना आरंभ करता है। परन्तु साधना की प्रगति के साथ-साथ उसका अहंकार विनष्ट होते जाता है और वह "सोहम्" में अपनी साधना का अन्त करता है। परमेश्वर के साथ एक हो जाता है। भक्तियोग के माध्यम से यही अवस्था सर्वोच्च लक्ष्य है।

इस लक्ष्य की ओर चाहे जो भी कदम आप उठाते हैं वह अत्यन्त शुभ एवं दिव्य है। शास्त्रों की घोषणा है कि जब किसी व्यक्ति में भक्ति विकसित होती है तो इससे केवल उसी का कल्याण नहीं होता बल्कि समस्त मानवता का कल्याण होता है। जब कोई व्यक्ति संत महात्मा बन जाता है तो उसकी उपलब्धि से समस्त पृथ्वी आनन्दित होती है। इससे बढ़कर अन्य कोई उपलब्धि नहीं है। उसकी सात पीढ़ियों के पूर्वज आनन्दित हो जाते और उसे आशीर्वाद देते हैं।

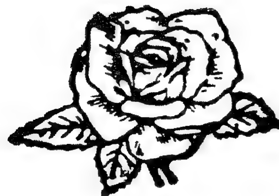
कल्पना कीजिए कि यदि संसार में संत महात्मा नहीं होते लोग केवल विषय भोग में ही डूबे रहते तथा उन्हें आगे का मार्ग दिखलाने वाला कोई नहीं होता तो इस मानवता का क्या होता। जब बुढ़ापे में इन्द्रियाँ

शिथिल पड़ जाती हैं तो वृद्धावस्था के कारण शनैः शनैः मनोशारीरिक दुर्बलता, निराशा, उदासी, पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता। इसी प्रकार मानव-व्यक्तित्व निराश और दुःखी होकर विनष्ट हो जाता है।

कल्पना कीजिए कि यदि संसार के समस्त व्यक्ति केवल भौतिकवादी हो जायें तो इस सभ्यता और संस्कृति का क्या होगा ? परन्तु सौभाग्य की बात है कि संसार में हमेशा से संत-महात्माओं की उपस्थिति रही है। ये लोग ईश्वर द्वारा मानवता को दिये जाने वाले दिव्य उपहार हैं। जब आप ईश्वर की प्रार्थना करते हैं तो आपके हृदय से उसका प्रत्युत्तर प्राप्त होता है। जब समाज ईश्वर की प्रार्थना करता है तो सन्त-महात्माओं को भेजकर ईश्वर उनकी प्रार्थना का जबाब देते हैं। इस प्रकार समाज की प्रार्थना सुनकर हर समय परमेश्वर ने अनेक संत-महात्माओं को भेजा है जिन्होने परमेश्वर की दिव्य महिमा और प्रेम की अभिव्यक्ति की है।

इसलिए हमलोगों को भी सन्त महात्मा बनने की उत्सुकता होनी चाहिए तथा ईश्वर की ओर अग्रसर होते हुए ईश्वर भक्ति उत्पन्न कर दिव्यानन्द का रसास्वादन करना चाहिए।

ईश्वर आशीर्वाद आप सबों को प्राप्त हो !





योगमार्तण्ड श्रीस्वामी ज्योतिर्मयानन्द

३

आनन्द कहाँ है ?

आज हमलोग "आनन्द" कहाँ है ? विषय पर विचार करेंगे। सभी जीव आनन्द की खोज में है। सबों को आनन्द की चाह है। जब आप प्रसन्न होते हैं तो आप किसी विषय को पूरी गहराई से समझ सकते हैं। कठिन परिस्थितियाँ सहज प्रतीत होने लगती हैं। तनाव और सङ्घर्षमय वातावरण को थोड़ी प्रसन्नता, हल्की मुस्कान और अल्पानन्द मूल रूप से परिवर्तित कर अनेक समस्याओं को समाप्त कर देता है।

जब आप जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं तो आपको ज्ञात होता है कि आनन्द की धारणा जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होती गई है। बाल्यावस्था में आपकी खुशियाँ खिलौनों में सीमित थी। जैसे ही आप बड़े हुए खिलौनों में किसी प्रकार का आनन्द नहीं पाते। उन्हें त्याग दिया। विद्यार्थी जीवन में आपकी खुशियाँ खिलौने से हटकर पुस्तकें, पढ़ाई और अनेक प्रकार की मानसिक संलग्नता में प्रतिस्थापित हो गई। गृहस्थ बन जाने पर आपको अपने सगे सम्बन्धियों, मित्र, पति-पत्नी, पुत्र इत्यादि से आनन्द प्राप्त होने लगा। इसके साथ-साथ धन, मान, यश और अनेक उपलब्धियों के द्वारा आप आनन्द प्राप्त करने लगे। इस प्रकार आनन्द की खोज, समय समय पर अनेक वस्तुओं में परिवर्तित होती रहीं। अन्ततः आप बिना पूर्ण आनन्द प्राप्त किए ही असंतुष्ट और दुःखी अवस्था में इस संसार से

विदा हो जाते हैं। इस प्रकार सांसारिक वस्तुओं के पीछे भागने और उसको प्राप्त करने से आनन्द की अनुभूति नही होती। व्यक्ति यदि सच्चे आनन्द की खोज कर उसे प्राप्त करे तो उसे सच्ची संतुष्टि प्राप्त हो सकती है।

आनन्द सार्वभौमिक धर्म है। योग परम्परा के अनुसार सभी व्यक्ति आस्तिक हैं। आनन्द ही परम ब्रह्म परमात्मा है। उन्हें ईश्वर में विश्वास दिलाने की कोई आवश्यकता नही है। जब आप परमात्मा को आनन्द का प्रतिरूप बताते है तो सभी व्यक्ति स्वत: ही आस्तिक हो जाते है। क्योंकि सभी लोग चाहे वे अध्यात्मवादी है अथवा भौतिक वादी को आनन्द की आवश्यकता है तथा वे आनन्द की खोज करते और उसमें विश्वास करते है। यद्यपि सभी व्यक्ति आनन्द प्राप्त करना चाहते परन्तु बहुत कम ही लोगों को पता है कि इसकी खोज कैसे और कहाँ करें।

एक पुरानी कहानी है। कोई बुढिया अँधेरे घर में अपने फटे वस्त्रों की सिलाई कर रही थी। सिलाई करते समय उसकी सूई कहीं गिर गई। उसने सूई खोजने का बहुत प्रयास किया परन्तु कमरे में अँधियारा होने के कारण सूई पाना कोई सहज नही था। उसने सोचा कि कमरे में तो अँधियारा है इसलिए कमरे के बाहर जहाँ प्रकाश है वहाँ सूई की खोज करनी चाहिए। बाहर जाकर वह घन्टों सूई खोजती रही परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। कोई व्यक्ति आकर उससे पूछा कि वह क्या कर रही है। उसने बताया कि कमरे में अन्धेरा है इसलिए वह अपनी सूई की खोज बाहर आकर उजाले मे कर रही है। यह तक बड़ा हास्यास्पद है परन्तु सच्चाई यही है कि हम में से अधिकांश व्यक्ति इसी तरह से अपना जीवन जी रहे हैं।

आनन्द जो इस जगत से परे है

आनन्द कही बाहर नही बलिक आपके हृदय में ही खोया हुआ है। यह कैसे ? वेदांत दर्शन बताता है कि गहन निद्रा में आप किसी वस्तु के सम्पर्क में नहीं होते। फिर भी आपको आनन्द मिलता है। यदि आप यह कहते है कि गहरी नीन्द में कोई आनंद नही है तो आप वेदात

द्वारा प्रदत्त तर्क से संतुष्ट हो जायेंगे। इस संसार में आप चाहे कितना भी समृद्ध, सम्पन्न क्यों न हों आप पूर्णतः संतुष्ट नहीं रहते। कितनी भी सुखद और आनंद की स्थिति क्यों न हो दैनिक जीवन में कुछ समय ऐसा आता है जब आप अपनी आँखे बंद कर सोना चाहते हैं तथा बहुत मूल्यवान वस्तुओं तथा आनंददायक स्थिति से दूर होना चाहते हैं। आप बिछावन पर लेट कर गहरी नीन्द लेना चाहते हैं। गहरी निद्रा के लिए क्या-क्या उपाय करते हैं—गद्दीदार आरामदायक बिछावन, गर्म कम्बल, साफ सुथरे कमरे, शांत और प्रिय वातावरण। यह सारा उपक्रम गहरी नीन्द लाने के लिए ही किया जाता है। यह सिद्ध करता है कि वस्तुओं के बिना भी व्यक्ति को गहन नींद में एक विचत्र प्रकार का आनद प्राप्त होता है। यदि गहरी नीन्द से आप को कोई अचानक उठाकर बहुत सुखद समाचार भी देता है तो आपकी सबसे पहली प्रतिक्रिया झुँझलाहट की होती है। आप नीन्द में व्यवधान आने के कारण आंतरिक रूप से क्रुद्ध हो जाते हैं। गहन निन्द्रा में न तो समय होता है न कोई सीमा होती है। आप किसी के साथ सम्बन्धित भी नहीं रहते। वहाँ न तो कोई गप है न कोई समाचार, न हीं टेलीफोन और संसार की अन्य वस्तुये। फिर भी आप को जो आनंद प्राप्त होता है उसे नकारा नहीं जा सकता। गहरी नीन्द जिसमें आप सभी भौतिक वस्तुओं से परे रहते हैं के बिना आप के अन्य आनंद और समृद्धि खोखली और महत्वहीन प्रतीत होती है। यह इस बात को सिद्ध करता है कि जिस खोखले आनंद की आप खोज कर रहे हैं वह वाह्य नहीं बल्कि आपके हृदय की गहराई में ही वर्तमान है।

अब आनन्द के विषय में कुछ दार्शनिक तथ्यों को जान लेना आवश्यक है। परम परिशुद्ध अवस्था में आनन्द को 'ब्रह्मानन्द' कहा जाता है। उपनिषदों में इसे 'भूमा' या अनन्त कहा गया है। यह आपके हृदय में निरन्तर वर्तमान है। अलग-अलग साधनाओं में इसी ब्रह्मानन्द को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। वेदान्त-दर्शन के अनुसार यह जगत् मिथ्या है। वास्तव में यह संसार एक मात्र वास्तविकता ब्रह्म पर ही प्रत्यारोपित है इसलिए अद्वैत आत्मा ही परम वास्तविकता है।

ब्रह्मानन्द ही अद्वैतानन्द है। ब्रह्म ही आपकी अन्तर्आत्मा है। जब आप इस परम सत्ता के साथ अपनी एकता की अनुभूति करते हैं तो इसे आत्मानन्द कहा जाता है। राजयोग में इसी आनन्द को योगानन्द कहा गया है। समाधि की उन्नत अवस्था में इसका अनुभव होता है। ये सारे नाम ब्रह्मानन्द -जो सभी प्राणियों का एकमात्र लक्ष्य है के प्राय-वाची हैं। ब्रह्मानन्द की अनुभूति के बाद आनन्द की खोज हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है।

उपनिषदों में कहा गया है कि अनेक दर्शन और वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद भी नारद को आन्तरिक तुष्टि और आनन्द नहीं प्राप्त हुआ। महान संत सनत कुमारने नारद को अनेक प्रकार का उपदेश देकर अन्त में उनसे कहा—"हे नारद, जो अनन्त है वही परमानन्द है। संकीर्णता और परिसीमा में आनन्द नहीं है।" अनन्तता में ही आनन्द है इसलिए अनंत को उद्घाटित करना चाहिए। जो अपरिमित, दिक्काल से अप्रभावित आत्मा है उसकी जब अनुभूति हो जाती है तो आपको अमित आनन्द की अनुभूति होगी और आप परम संतुष्टि प्राप्त करेंगे। वही आत्मा आप है। संसार से जो आपको आनन्द प्राप्त प्रतीत होता है वास्तव में उन वस्तुओं से नही आता।

सामान्य मानव द्वारा अनुभूत इस आनन्द का वेदान्त सूक्ष्म विश्लेषण करता है और उसे "विषयानन्द" कहकर सम्बोधित करता है। जब आपको किसी वस्तु से आनन्द प्राप्त होता प्रतीत होता है उस अवस्था में वास्तव में क्या होता है ? क्या सचमुच उन वस्तुओ से आनन्द प्राप्त होता है ? यदि उस वस्तु से सचमुच आनन्द आता है ता उक्त वस्तु आपको हमेशा ही उतना आनन्द देती जितना कि आरंभ में देतो है। परन्तु, अनुभव यह बताता है कि काई वस्तु हमेशा आपको उतना आनंद नहीं देती जितना आरभ में उसकी प्राप्ति में आपको अनुभव हुआ होता है।

एक साधारण उदाहरण से इस बात को समझा जा सकता है। किसी सुन्दर और प्राकृतिक छटा से घिरे वातावरण में आप कभी जाते है। उस परिवेश में पहुँचते ही आपको बड़ा आनन्द आता है और

आप विश्रान्ति तथा आराम का अनुभव करते हैं। आपको जब वह स्थान सुन्दर लगने लगता है तो आपके मन में एक भावना उठती है— "मैं इस स्थान को कैसे खरीद लूँ।" आपकी बुद्धि उस स्थान को लेने के लिए प्रेरित करती है। परिणामतः आप उस भूमि के स्वामी के साथ सम्पर्क कर उसको खरीदने की सारी व्यवस्था करने लगते हैं। इस स्थिति में केवल दो संभावनायें हैं— यदि आप सौभाग्यशाली हैं तो आपको वह स्थान मिल जायेगा और यदि आप उतने सौभाग्यशाली नहीं हैं तो आप उसे खरीदने में सफल नहीं हो सकते है। मान लीजिए कि जिस भूमि को खरीदने की आपकी इच्छा थी उसे आप लेने में सफल हो जाते हैं तब आपको उस स्थान से सम्बन्धित अन्य समस्याओं के साथ आपका साक्षात्कार होता है। आप उस स्थान को और सुन्दर और आकर्षक बनाना चाहते हैं। आप उसकी रक्षा भी करना चाहते हैं। दूसरे लोग जिन्हें उससे आनन्द मिल रहा था उनसे बचाना चाहते हैं। जब आप उसी स्थान में बैठकर इन सारी समस्याओं पर विचार करने लगते हैं तो आपको इस बात से विस्मय होता है कि जहाँ पहले आपको आराम और विश्रान्ति का अनुभव हुआ था वहीं अब तनाव और व्यग्रता हो रही है। आरंभिक प्रसन्नता आपकी पकड़ से परे हो गई है। आपको वह स्थान मिला, हरे जङ्गल और कल-कल निनाद करती सरिता मिली परन्तु, आनन्द आपके हाथों से निकल गया। इस समय तक आपका मन किसी और वस्तु में आनन्द का दर्शन करने लगता है और आप अपनी मूर्खता को समझे बिना अब आनन्द की खोज में उस दूसरी वस्तु की प्राप्ति में लग जाते हैं। यही माया है। आप अपनी मूर्खता को जाने बिना ही एक के बाद दूसरी मूर्खता और भ्रम के शिकार हो जाते हैं।

उपरोक्त उदाहरण से आपको यह अनुभव हुआ होगा कि आनंद सम्पत्ति से नहीं प्राप्त होता बल्कि यह मन की प्रशांत एवं निरभ्रावस्था की उपज है। उस विशेष स्थिति में आपका मन शांत और तनावरहित हो जाता है। उस निरभ्रता का कारण मन में उत्पन्न सत्व का प्रबल प्रवाह है।

कर्म एवं त्रिगुण

योग की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने विगत कर्मो से प्रभावित रहता है। जीवन के किसी समय विशेष पर पूर्वकृत शुभ कर्म रहस्यमय ढङ्ग से फलित होने लगते है। अचानक कोई शुभ कर्म अपना परिणाम प्रकट करने लगता है। इस शुभ कम के प्रभाव से आप शांत चित्त हो जाते हैं। ज्योंहो आपका मन प्रशांत स्थिति में आ जाता है आपके अन्दर वर्तमान आनंद आपके शांत मन में प्रतिबिम्बित होता हुआ स्वयं को प्रकट करने लगता है। सूक्ष्म विवेक और गहन समझदारी के अभाव में आपको ऐसा लगता है कि आपको यह आनन्द आपके पास एकत्रित हुई भौतिक वस्तुओं के कारण प्राप्त हो रहा है। इसलिए व्यक्ति उन वस्तुओं के साथ आसक्त होकर उन्हें एकत्रित करने के प्रयास में लग जाता है।

यही गलता है। ज्यों ही आप किसी वस्तु से आसक्त होकर उसकी ओर झुकते हैं उसी समय आपका मन सात्विक स्थिति से राजसिक स्थिति में आ जाना है। राजसिक स्थिति आते ही आपका मन व्यग्र और तनाव ग्रस्त हो जाता है। रजस के कारण आपको कष्टों का अनुभव होने लगता है। आत्मानन्द आपकी पकड़ से निकल जाता है। आपका मन अधोगामी होकर क्रोध, एवं ईर्ष्या और विकृत बुद्धि से प्रभावित हो जाता है। आप एक विचित्र प्रकार के तर्क से स्वयं को संतुष्ट करते हुए यह सोचने लगते हैं कि—चूँकि वाह्य शक्तियाँ और प्रभावों के कारण मेरी मनोकामनाये नहीं पूण हो रही है इसलिए मैं दुःखी हूँ। इसलिए आपका मन प्रतिशोध, शत्रुता और क्रोध की ज्वाला में जलने लगता है। मन की शक्ति व्यर्थ होने लगती है। इसे तमस कहा जाता है। दूसरी ओर यदि सात्विक मनःस्थिति में ही आप अनासक्त भाव और दार्शनिक दृष्टिकोण बनाए रखते तो आपको यह ज्ञात कर अत्यन्त प्रेरणा मिलती की आपकी खुशी आपकी ही अन्तरात्मा से निकल रही है। यह वस्तुओं से नहीं बल्कि आपके अन्दर वर्तमान परम तत्व—ब्रह्म से ही आ रही है तो आप भौतिक वस्तुओं से आसक्त नहीं होते। इस सूक्ष्म विवेक का विकास ही परम परिशुद्ध परमानन्द प्राप्ति का मूल आधार है।

दूसरे शब्दों में आपको सर्व प्रथम यह धारणा बदलनी होगी कि आनंद वस्तुओं से प्राप्त होता है। आपको यह सोचना बन्द करना होगा—"आह ! क्या ही अच्छा होता यदि हमारी परिस्थितियाँ इस प्रकार परिवर्तित हो जाती। आरम्भ में आदत वश आप का मन ऐसा ही विचार करेगा परन्तु आप इन विचारों की उपेक्षा कीजिए और उन्हें स्थाई नही बनने दीजिए। इनको बहुत महत्व नहीं दीजिए।

अपने मन को यह समझाने का प्रयास कीजिए कि आनन्द आपका अपना स्वरूप है। यह वस्तुओं से नहीं बल्कि अन्तरात्मा से उत्पन्न होता है। यदि मैं प्रसन्न होना चाहता हूँ तो मैं अर्द्ध रात्रि, प्रातः, दोपहर कभी भी प्रसन्न हो सकता हूँ। मैं जाड़ा, गर्मी, कड़कड़ाती बिजली और तूफान के बीच भी प्रसन्न रह सकता हूँ। चूँकि मै यह शरीर नहीं हूँ। इस लिए कहीं, कभी भी प्रसन्नता का अनुभव कर सकता हूँ। मैं वास्तव में आत्मा हूँ। इसलिए मैं सर्वत्र, सभी समय प्रसन्न रह सकता हूँ।" इस प्रकार की धारणा विकसित करना आवश्यक है।

वेदांत दर्शन के अनुसार यह जगत ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप पर प्रति स्थापित एक मिथ्या प्रपञ्च है। इसलिए अद्वैत आत्मा ही परमवास्त विकता है तथा ब्रह्मानंद ही अद्वैतानन्द है। आपकी अन्तरात्मा ही परम ब्रह्म है। जब आप इस परमतत्व के साथ अपनी एकता की अनुभूति कर लेते हैं तो इसे आत्मानन्द कहा जाता है। राजयोग में समाधिस्थ मन के द्वारा अनुभूत इसी आनन्द को योगानन्द कहा गया है। आनन्द के ये सभी नाम ब्रह्मानंद के ही प्रयावाची हैं तथा सभी लोगों द्वारा प्राप्त किया जाने वाला एक मात्र लक्ष्य है। ब्रह्मानन्द के अनुभव के बाद आनन्द की खोज हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है।

इस बात को अच्छी तरह समझ लीजिए कि यदि आपका मन भौतिक बस्तुओं की ओर आकर्षित होने लगता है तो यह अपने लक्ष्य से दूर होता जाता है। भौतिक वस्तुओं से प्राप्त आनन्द (Happiness) वास्तव में 'Hoppiness' है जिसमें आप आनन्द की खोज में एक के बाद दूसरी वस्तु के पीछे भागते रहते हैं।

को सात्विक आध्यात्मिक स्पंदनों से परिपूर्ण करने से प्राप्त आनंद का जो अनुभव होगा उसके बिना आप एक दिन भी नहीं रह सकेंगे। आप भोजन और अन्य कई वस्तुओं के बिना भले ही रह लें परंतु एक बार आपको ध्यान में आनंद की झलक मिलने के बाद आप इसके बिना रह ही नहीं सकेंगे। इसलिए आरंभ में सात्विक आनंद अनुशासनरहित व्यक्ति के लिए दण्ड स्वरूप कठिन लगेगा परंतु बाद में यही अमृत के समान आनंदायक और सुखद प्रतीत होगा।

राजसिक आनन्द आरम्भ में अमृत तुल्य प्रतीत होता है। इसके आरम्भ में ही मन अनेक प्रकार की आशा तथा संभावनाओं से पूर्ण हो जाता है तथा अनेक प्रकार का आकर्षण भी दिखाई पड़ता है। आपको एक सुन्दर पुष्प तो दिखाई पड़ता है परन्तु उसके अंदर छुपा जहरीला नाग आप नहीं देख रहे हैं। जैसे-जैसे आप उसके पीछे जाने लगते हैं वैसे-वैसे वहाँ छुपा सर्प अपने जहर से आपका व्यक्तित्व विषाक्त करने लगता है। इसलिए राजसिक आनंद आरंभ में बड़ा मधुर लगता है परंतु इसका अंत बहुत कड़ुआ हुआ करता। ऐसे आनंद से बचने के लिए आपको भौतिक वस्तुओं के आकर्षक चमक दमक से सावधान रहना होगा। इसके बदले अपने विवेक का उपयोग करते हुए उन वस्तुओं की भ्रामकता और नश्वरता को देखने का प्रयास करना चाहिए।

तीसरे प्रकार का आनंद तामसिक है जिसमें आरम्भ से अन्त तक आपको केवल कष्ट ही कष्ट होता है। शराब, धूम्रपान, और मादक दवाओं पर होने वाली निर्भरता इस प्रकार के आनन्द के उदाहरण हैं। पहली बार धूम्रपान करने पर किसे आनंद मिलता है ? उसे घुटन और खाँसी के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। आप अपने मन को घुटन प्रदान करने वाली परिस्थिति अथवा वस्तुओं से आनन्द प्राप्त करने का प्रशिक्षण दे सकते हैं। इसी प्रकार का आनन्द तामसिक है। कुसंगति में पड़कर आप कुछ ऐसे कुकृत्यों में स्वयं को संलग्न कर लेते हैं और अपने आप को यह संतोष देते हैं कि ऐसे ही कार्यों से अमित आनन्द मिल रहा है जिसके बिना आप रह ही नहीं सकते। आप मादक दवाओं, शराब और कई बुरी आदतों पर पूरी तरह निर्भर हो जाते हैं। ऐसा करने से आपको

जिस आनन्द की प्राप्ति होती है वह तामसिक आनंद है। आरम्भ से अंत तक यह विकृत और अधोगामी होता है। इसलिए आनन्द की खोज करने वालों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे स्वयं को ऐसे आनंदों से अलग रखें।

ध्यान, मंत्र जप और सत्संग से प्राप्त होने वाला सात्विक आनद बड़ा ही सुखद और अद्भुत होता है। यह आनंद आपको सच्चे आध्यात्मिक आनंद—जो और कुछ नहीं ब्रह्मानंद ही है तक ले जाने वाला होता है। जब आप की बुद्धि अन्तःप्रज्ञा में रूपांतरित हो जाती और योगाभ्यास से आपको पूर्ण चित्त शुद्धि प्राप्त हो जाती तो आपको परम पवित्र और परमोत्तम ज्ञानानंद का अनुभव होता है।

आत्मसाक्षात्कार से प्राप्त होने वाले आनंद के विषय में सामान्य लोगों को समझाने के लिए उपनिषदों में एक उदाहरण दिया गया है। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति अत्यन्त स्वस्थ्य, सुन्दर, युवा और समस्त पृथ्वी का शासक है। उसकी सभी इच्छायें पूर्ण होती हैं तथा उसके अधिन ही सब कुछ है। मानवीय दृष्टिकोण से यह आनंद की एक आदर्श स्थिति है। ब्रह्मानंद को समझने के लिए इस मानवीय आनंद को एक ईकाई मानकर जब हम आगे बढ़ते हैं तो इस आनंद से सौ गुणा अधिक आनंद गंधर्वों को प्राप्त होता है। इन गंधर्वों द्वारा जो आनंद अनुभव किया जाता है उससे सौ गुणा अधिक आनंद देवताओं को प्राप्त है। देवताओं द्वारा अनुभूत आनंद की तुलना में मानवीय आनंद चींटी द्वारा अनुभूत आनद की तरह तुच्छ और महत्वहीन प्रतीत होता है। चीनी के दाने को ले जाने वाली चींटी की ओर देखिए। वह कितनी प्रसन्न और आनंदित लगती है। मानव के लिए उसका कोई मूल्य नहीं है। कोई अर्थ नहीं है। परंतु जब आप अपने आनंद की तुलना देवताओं द्वारा अनुभूत आनंद से करते हैं तो चीनी के एक दाने से चींटी को होने वाले आनद के ही समान है। पुनः देवताओं द्वारा अनुभूत आनंद की तुलना जब इन्द्र के आनंद से करते हैं तो वह बहुत तुच्छ और महत्वहीन प्रतीत होता है। देवताओं द्वारा प्राप्त आनंद के हजार गुणा अधिक अनंद इन्द्र को प्राप्त

हैं। वृहस्पति को इन्द्र के आनंद से सौ गुणा अधिक आनंद मिलता है। ब्रह्मा को वृहस्पति से सौ गुणा अधिक आनंद प्राप्त है।

इस प्रकार इस सापेक्षिक सृष्टि में आनंद के कई स्तर हैं। उपनिषदों में यह घोषित किया गया है कि ब्रह्मसाक्षात्कार के बाद योगी को आदर्श मानवीय गन्धर्व, देवता, इन्द्र, वृहस्पिति और ब्रह्मा द्वारा अनुभूत आनंद तो प्राप्त होता ही है इससे भी अधिक कुछ और प्राप्त होता है। ऐसा क्यों ? क्योंकि अन्त:प्राज्ञिक अनुभूतियों के बाद जो आनद प्राप्त होता है वह अनन्त और अपरिमित हैं। इस स्थिति में अखण्डित, आत्मा की अनुभूति होती है जिसकी न तो कोई श्रेणी है और न कोई स्तर। वह तो अपरिमित और असीम्य है। इसलिए आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त आनंद अनंत है जिसकी तुलना किसी भी सापेक्षिक आनंद से नहीं की जा सकती। उपनिषदों की यह भी घोषणा है कि सभी स्तरों और अंशों में अनुभूत आनंद एक साथ मिलकर भी ब्रह्मानंद सागर की एक बूँद से भी कम है। आपकी अन्तर्आत्मा ही वह ब्रह्म है।

आपके हृदय की निधि

इसलिए अनंतानंद की लहरें प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उठ रही हैं। फिर भी अधिकांश व्यक्ति प्यासे हैं। जल में रहती हुई प्यासी मछली की तरह ही सभी प्राणियों की विचित्र स्थिति है। विशेष कर यह मानव जो ज्ञान, बुद्धि, विवेक और चिन्तन को प्रयुक्त कर सकता है और अधिक दु:खी है। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में अनंत आनंद है परंतु वह अपने मानसिक भ्रम एवं द्वंद्वों को दूर करने में असमर्थ है इसलिए इस आनंद का भोग नहीं कर पा रहा है।

ग्रन्थों में एक ब्रह्मण परिवार की कथा आई है। एक ब्रह्मण अपनी पत्नी और पाँच पुत्रों के साथ प्रतिदिन भिक्षा माँगा करता था। शाम को वे सभी झोपड़ी के एक कोने में सो जाते थे। उस कोने से उन्हें विशेष लगाव था। कुछ दिनो के बाद एक जानकार व्यक्ति आकर उनसे कहा कि जहाँ वे सोते हैं उस जमीन में एक खजाना गड़ा है। यदि वे लोग वहाँ

खुदाई करें तो इतनी धन राशि मिलेगी कि फिर भिक्षा माँगने की आवश्यकता ही नही रहेगी। उसने यह भी कहा कि वे लोग वर्षो से इतनी सम्पदा के मालिक हैं परंतु अज्ञान के कारण दरिद्रता और निर्धनता का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

ठीक इसी प्रकार से प्रत्येक आत्मा सभी मानवीय कल्पनाओं से भी अधिक समृद्ध और सुखी है। प्रत्येक बार जब आप सोने जाते है उतनी बार आप अनन्त समृद्धि और खुशहाली के छुपे खजाने पर ही सोते है। वह स्थान है आपका हृदय। बुद्धि, आत्मा की पत्नी और पाँच पुत्र पाँच इन्द्रियाँ हैं। आप आनन्द की खोज में एक के बाद दूसरी वस्तु की भीख माँगते चलते हैं। फिर भी जब कभी आप सोते है तो आप उसी स्थल (हृदय) में विश्रान्ति प्राप्त करते है जहाँ आपके लिए अनन्त आनन्द का खजाना प्रतीक्षा कर रहा है।

इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लेने के पश्चात अपने हृदय की गहरी खुदाई आरंभ कीजिए। हृदय की यह खुदाई, ध्यान, प्रार्थना, मत्र जप, सद्कर्मों से चित्त शुद्धि और ईश्वर की उपस्थिति की अनुभूति से की जाती है। संक्षप में आप योगाभ्यास के द्वारा अपने हृदय की गहराई में प्रवेश कर अनन्त आनन्द की अजस्र निधि उद्घाटित कीजिए। यह उद्घाटन अत्यन्त रोमाञ्चक है। वह किसी वस्तु से कभी नही मिल सकता।

आर्कमेडीज को जब उप्लावता के सिद्धान्त (Law of bouyancy) का पता चल गया तो वह अपने स्नानागार से चिल्लाते हुए निकला— "मुझे मिल गया, मुझे मिल गया।" जब आप किसी गुप्त रहस्य को खोज निकालते हैं तो वह क्षण बड़ा रोमांचकारी और अद्भुत हुआ करता है।

उपनिषदों के ऋषि को जब अपने हृदय में वर्तमान अमित आनन्द की अनुभूति हुई तो वह भावावेश में चिल्ला उठा—"हा वु, हा वु, हा वु, अहमनुम्, अहमनुम् अहमनुम् -अर्थात्—क्या ही आश्चर्य ! क्या ही

आश्चर्य !! आश्चर्य !!! मैं यह भौतिक जगत हूँ। मैं पदार्थ हूँ और मैं ही इन पदार्थों को खाने वाला हूँ। मैं वह जीवात्मा हूँ जो भौतिक पदार्थों का भोग करता है। मेरी महिमा सभी मानवी कल्पनाओं से परे सर्वोच्च पर्वत शृंग से भी ऊँची है।"

इसलिए आप हमेशा सनत कुमार द्वारा नारद को दिए गये उपदेशों का स्मरण बनाए रखिए—"जहाँ अनन्तता है वहीं परमानन्द है। जहाँ संकीर्णता और सीमितता है वहाँ आनन्द हो ही नहीं सकता।" परि-सीमित वस्तुओं में जो आनन्द दिखाई पड़ता है वह भ्रामक और मिथ्या है। केवल सतही और अत्यन्त क्षणिक अनुभव हैं जो तंत्रिकातंत्र में हल्की कम्पन करते हैं। जब आप अपने हृदय में उपस्थित अनन्त आनन्द को उद्घाटित कर लेंगे तब आप किसी भौतिक वस्तु पर आनन्द के लिए निर्भर नहीं रहेंगे। आप इस जगत को अस्वीकृत कर देंगे। वह आनंद न तो समाप्त होगा और न हीं कोई उसे ले सकेगा। इसमें कभी उतराव चढ़ाव नहीं होगा, कोई परिवर्तन नहीं होगा। यह अनन्त और असीम्य है। जब आप इस आनन्द को प्राप्त कर लेंगे तभी आप वास्तव में सुखी हो सकेंगे।

परमात्मा आपको परमानन्द प्रदान करें !



४

मैं कौन हूँ ?

प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष प्रमुख समस्या 'मैं कौन हूँ ?' का उत्तर प्राप्त कर अपने यथार्थ स्वरूप को उद्‌घाटित करना है। व्यावहारिक जीवन में जब कोई व्यक्ति अपनी पहचान भूल जाता है तो उसे विकृत अथवा पागल कहा जाता है। मनोवैज्ञानिक तथा अनेक मनोचिकित्सकों की सहायता से उसे पुनः अपनी पहचान कराई जाती है। परन्तु दार्शनिक दृष्टिकोण से जिसे आप अपनी पहचान (व्याव-हारिक स्तर पर) मानते हैं, वह वास्तव में आपका वास्तविक स्वरूप नहीं है। वेदान्त दर्शन की यह एक गहन घोषणा और विषद विषय है परमात्मा ही आपका सच्चा स्वरूप है। मोसेस जब परमेश्वर से उनका नाम पूछता है (बाइबिल का एक प्रसंग) तो परमात्मा उसे रहस्यमय ढङ्ग से उत्तर देते हैं—'मैं वही हूँ' "I AM THAT I AM" बाइबिल की यह घोषणा उपरोक्त तथ्य की ओर ही एक दिशा निर्देश है।

इस समझ को कैसे अनुभूत किया जाय ? वेदान्त दर्शन तीन महान सद्ग्रन्थों पर अवलम्बित है। ये हैं—उपनिषद (जिनका आधार वेद है), गीता और महर्षि व्यास द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र। ये तीनों महान ग्रन्थ व्यक्ति के यथार्थ स्वरूप के विषय में बताते हुये उसे प्राप्त करने के लिये आवश्यक मार्ग दर्शन भी प्रदान करते है।

सबों में वर्तमान शाश्वत सत्य—"मैं हूँ" वास्तव में क्या है ? प्रत्येक व्यक्ति का स्वरूप दो घटकों से निर्मित है। एक है •उसकी क्षणिक तथा नश्वर पहचान और दूसरा उसका शाश्वत एवं अमर अस्तित्व। शरीर, मन, अहकार और चित्त तो बनते और विनष्ट होते रहते हैं। इनमें अनेक प्रकारके परिवर्तन भी हुआ करते हैं। परन्तु आपके अन्दरएक शाश्वत सत्ता भी वर्तमान है जिसमें कभी भी कोई रूपान्तरण नहीं होता। वह आकाश की तरह निरभ्र और अप्रभावित रहा करता है। आप वही अमर वास्तविकता हैं। "मैं यह शरीर नही हूँ। मैं परमात्मा से अपृथक वास्तविक सत्ता हूँ।" वेदान्त द्वारा प्रस्तुत यही सर्वोच्च शिक्षा है।

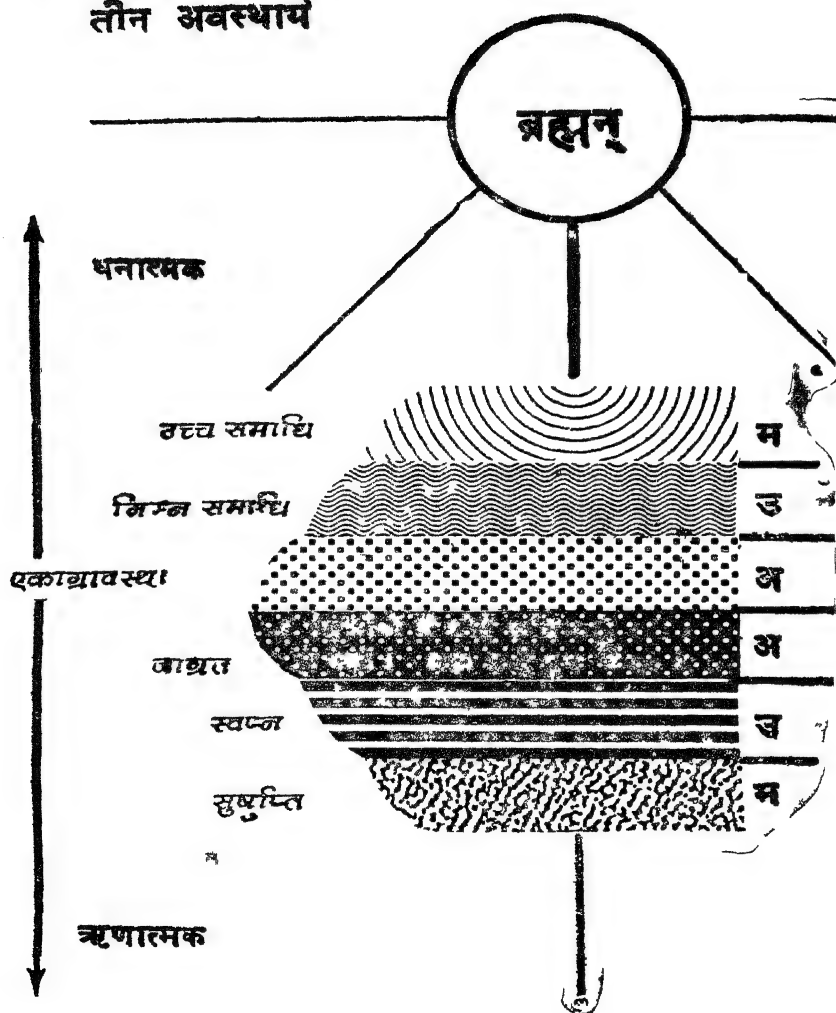
यदि आप अपने जीवन का गंभीरता पूर्वक अध्ययन करेंगे तो आपको अहंकार और वासनाओं की जादुई लीला का अनुभव होगा। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता है वैसे वैसे आपका अहकार भी परिवर्तित होने लगता है। अहकार में परिवर्तन आते ही आपकी इच्छायें जो कभी आपके (अहकार) लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण थी वे महत्वहीन हो जाती है। जब आप बालक थे तो आपका अहकार खिलौनों में ही अधिक रूचि लेता था। आप इन्हीं खिलौनों के बारे में ही सोचते रहते तथा अधिक से अधिक प्राप्त करने का उद्योग करते रहते थे परन्तु जब आप बड़े हो गये तो आपका अहंकार परिवर्तित हो गया परिणामस्वरूप अब आपको खिलौनों में कोई रूचि नहीं रही। आप में अब दूसरी इच्छायें उत्पन्न हो गयी। आप उन्हें पूर्ण करने के लिये ही सङ्घष करने लगे। यहां तक कि आप यह सोचने लगे हैं कि जब तक ये इच्छाय पूरी नहीं होंगी तब तक आपको आनन्द और खुशी प्राप्त ही नही हो सकती। इससे भी अधिक जब आपकी मृत्यु हो जाती है और आप पुनर्जन्म के माध्यम से नया शरीर धारण करते हैं तो आपके सम्बन्ध, वास्तविकता और इच्छायें भी नवीन रूपों में उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार बादलों की तरह यह अहंकार बनता और विनष्ट होता रहता है। इसलिये 'मैं कौन हूँ ?' प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिये इस सत्य को जानना आवश्यक है कि अहकार की परिसीमित सीमा में दिया गया कोई भी उत्तर गलत एवं भ्रामक होगा।

जन्म मृत्यु से परे

अहंकार और संकीर्ण मन के प्रभाव में अधिकांश व्यक्ति की यही धारणा है कि शरीर के समाप्त होते ही उनका अन्त हो जायेगा। परन्तु यह सच्चाई नही है। महाभारत मे जब यक्ष युधिष्ठिर से यह प्रश्न पूछता है कि "ससार में सबसे बड़ा आश्चय क्या है ?" तो इसके उत्तर में युधिष्ठिर कहते है "प्रत्येक व्यक्ति यह देखता और सुनता है कि सभी समय लोग मर रहे है। परन्तु वह इस बात में विश्वास नही करता कि एक न एक दिन वह भी अवश्य मरेगा। यह तथ्य ही ससार का सबसे बड़ा आश्चर्य है।" वास्तव मे आप मृत्यु को कभी स्वीकार नही करेंगे। क्योंकि आपके अन्तर्मन में (जो आपका सच्चा स्वरूप है) मृत्यु का कोई अस्तित्व नही है। आप अपनी गहराई में यह जानते है कि आप यह शरीर नही है। मृत्यु भय एक आरोपित भय है। इसका कारण है आपका अज्ञान। इसी प्रकार जन्म भी वास्तविक नही हुआ करता। जब आपसे पूछा जाता है "आपका जन्म कब हुआ ?" तो आप अपने माता-पिता से सुनो किसी तिथि विशेष का स्मरण करने लगते है। आप अपने जन्म का प्रत्यक्ष द्रष्टा नही है। आपने अपना जन्म स्वयं नही देखा है। इस दिन आपके शरीर का जन्म हुआ आपका नहीं।

आपको कार किसी कारखाने मे बनती है। आप उसका उपयोग करते हैं। जब आपको अपनी कार की आवश्यकता नही रह जाती तो आप उसका परित्याग कर दूसरे की प्रतीक्षा करते है। यदि अपनी कार से आप बहुत आसक्त हो जाते है तो जब कभी आपकी कार किसी दुर्घटना में टूट जाती तो आपका मन भी टूट जाता है। इसी प्रकार इस शरीर के साथ भी है। यदि आप इसमे अत्यन्त आसक्त है अथवा इसे ही अपना यथार्थ स्वरूप मान बैठते हैं तो मृत्यु की कल्पना भी आपके मन में असह्य भय उत्पन्न कर देती है। परन्तु जब आप अपने सच्चे स्वरूप को ज्ञात कर लेते है तो आप मृत्यु को उसी प्रकार देखेंगे जैसे अपनी पुरानी कार के बदले नई कार के परिवर्तन को देखते हैं।

चेतना की
तीन अवस्थायें



इस प्रकार आप गहन अन्तर्दृष्टि से यह देखते हैं कि आत्मा की गरिमा कैसी अनन्त एव महान है तथा अहकार कितना मिथ्या और खोखला है। आत्मा की गरिमा इतनी भव्य एवं असीम्य है कि अहंकारिक दृष्टिकोण से उसको समझना असभव है। बच्चों को उस कथा का स्मरण कीजिए। किसी कुँयें में जब ऊपर से कोई मेढ़क गिरा तो कुँयें का मेढक पूछता है—"बाहर दुनियाँ कितनी बड़ी है ?" ऊपर से गिरा मेढ़क कहता है—"बाहर की दुनियां इतनी बड़ी है कि तुम कल्पना भी नही कर सकते। इसलिए अच्छा यही है कि तुम इस प्रश्न को पूछो ही नही।" परन्तु कुँयें का मेढक अपना मुँह फुलाकर पूछता है—'क्या ससार इतना बड़ा है ?' "ओह ! नहीं, तो क्या इतना बड़ा?" कुँयें का मेढक अपना मुँह और फैलाया। इसी प्रकार वह अपने प्रश्न को दुहराता रहा तथा मुँह और पेट को पहले से अधिक फैलाता रहा। अन्त में उसका मुँह और पेट दोनों फट गया। संसार कितना बड़ा है उसे समझाना असंभव था। इसी प्रकार अहंकार भी सांसारिकता के अँधियारे कूप के मेढ़क की तरह है। जब प्रबुद्धता और मुक्ति का संदेश किसी सत से प्राप्त होता है तो वह पूछने लगता है—"यह कितना बड़ा है ? यदि मुझे आत्मज्ञान प्राप्त हो जायेगा तो क्या होगा ? क्या बहुत पैसा मिल जायेगा ? क्या मेरे बच्चों को सुख मिलेगा ? क्या मैं बहुत दिनों तक जोवित रहूँगा ?" जब आप इस तथ्य की अनुभूति करने लगते हैं कि "मैं वही हूँ मैं भी परात्पर आत्मा हूँ" तो उपरोक्त सभी प्रश्न हास्यास्पद हो जाते हैं।

ॐ तथा चेतना की तीन अवस्थायें

'मैं कौन हूँ ?' जैसे गहन एवं शाश्वत प्रश्न को समझने के लिये यह आवश्यक है कि आप 'ॐ'—जो एक महान तथा दिव्य प्रतीक है का अर्थ समझ लें। 'ॐ' परमात्मा का प्रतीक है तथा "मैं कौन हूँ ?" के चिन्तन का सूत्र प्रदान करता है। यह कैसे ? ॐ संस्कृत के तीन अक्षर 'अ' 'उ' और 'म' के मेल से बना है। इसके उच्चारण में सबसे पहले आप 'अ' ध्वनि के साथ अपना मुँह खोलते हैं। अपने तालु और कंठ की सहायता से आप 'उ' ध्वनि का स्पन्दन करते हैं और होठों

को बन्द कर 'म्' ध्वनि उत्पन्न करते हैं। जो कुछ भी बोला जाता है उसमें उपरोक्त तीनों क्रियाये ही की जाती हैं। मुँह खोलना, शब्दों को व्यवस्थित करना तथा होठ बन्द कर आवश्यक स्पन्दन उत्पन्न करना। इस प्रकार यदि आपने 'ॐ' का उच्चारण कर लिया तो इससे सब कुछ उच्चारित हो जाता है।

जिस प्रकार रसायन विज्ञान में अनेक प्रकार के सूत्र (जैसे H_2O) हुआ करता है। उसी प्रकार 'अ-उ-म्'—ॐ के तीन घटक चेतना की तीन अवस्थाओं के प्रतीक हैं। 'अ' जाग्रत, 'उ' स्वप्न तथा 'म्' सुषुप्ति अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक व्यक्ति नित्यप्रति इन तीनों अवस्थाओं का अनुभव करता है। इन अवस्थाओं का वास्तविक स्वरूप और महत्व को समझ लेना साधकों के लिए अत्यन्त उपयोगी और ज्ञान वर्द्धक है। (इस अवस्था में यह ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है कि वेदान्त दशन व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित है। आपका किसी ऐसे अनजाने दशन का अध्ययन करने को नही कहा जाता जिसे आपने कभी सुना ही न हो। इसके बदले आपको नित्यप्रति अनुभव होने वाली जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति के माध्यम से गहन दर्शन का ज्ञान प्रदान कराया जाता है)

जाग्रतावस्था में आप अपनी दैनिक समस्याओं से घिरे रहते हैं। कभी-कभी आपको ऐसा लगता है कि दिक्काल के इस जगत में समस्याओं के कारण आपका दम घुट रहा है और आप कभी भी इससे मुक्त नहीं हो सकते। परन्तु कुछ पल के बाद ही आपको नीन्द आ जाती है और आप एक स्वप्न संसार में खो जाते हैं। इन स्वप्नों का आधार आपका जाग्रत जगत ही होता है। आपकी चेतना से एक नवीन अहंकार उत्पन्न हो जाता है। एक नूतन संसार की सृष्टि हो जाती है और आप अपनी जाग्रत समस्याओं को पूर्णतः भूल जाते हैं। स्वप्न-अहंकार के संदर्भ में अब आपके समक्ष भिन्न प्रकार की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जब आप जग जाते हैं तो स्वप्न संसार जाग्रत संसार में समाहित हो जाता है (इस जगह यह समझ लेना आवश्यक है कि वेदान्त के अनुसार

जाग्रत और स्वप्न दोनों ही परिवर्तनशील स्थितियाँ हैं। अतः आप इन दोनों में से कोई भी नहीं। आपके अन्दर जो शाश्वत, अपरिवर्तनशील स्थिर और परम तत्व है उसकी खोज ही वेदान्त का विषय है)।

स्वप्न की नश्वरता के विषय में थोड़ा विचार करें। इस अवस्था में आप स्वयं को जाग्रत अवस्था से भिन्न एक अलग प्रकार की परिस्थितियों से घिरे पाते हैं। जाग्रत स्थिति में जब आपको कहीं जाने की आवश्यकता होती है तो आप इसकी योजना बनाते, आरक्षण करवाते, टिकट लेते और अन्य प्रकार की व्यवस्था करते हैं। परन्तु स्वप्नावस्था में कहीं जाने के लिए आपको इसकी कोई आवश्यकता नही होती। आप संकल्प मात्र से जहाँ इच्छा होती है चले जाते हैं। आप कभी भी इस तथ्य को जानने का प्रयास नहीं करते कि कैसे आप संकल्प मात्र से ही इच्छित स्थान पर आ गये। केवल इसे आप एक तथ्य और वास्तविकता के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार स्वप्नावस्था में आपका बोध बहुत विरल और विश्लेषणात्मक क्षमता से रहित होता है।

स्वप्न के अध्ययन से आप मन के चमत्कारों को समझ सकते हैं। स्वप्न में भी आपका मन दिक्काल का निर्माण करता है। स्वप्न की वस्तुयें मन द्वारा रचित प्रकाश से प्रकाशित होती है। आपकी आत्मा स्वप्न स्रष्टा है तथा स्वप्न की समस्त वस्तुएँ भी वह स्वयं बन जाती है। परन्तु अज्ञान के कारण तथा विश्लेषणात्मक बोध के अभाव में आप स्वप्नावस्था में भी अनेक प्रकार के कष्टों का अनुभव करते हैं। उदाहरणार्थ आप स्वप्न में भी किसी सर्प के भय से स्वयं को भागते हुए अनुभव कर सकते हैं। आप अपनी बुद्धि को प्रयुक्त करते हैं और इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि इस भय से बचने के केवल दो ही रास्ते हैं। एक तो यह कि सर्प को मार कर इससे बचा जाय अथवा इस से दूर भाग जाया जाय। इसलिए आप एक ओर तो अपने आसपास डंडे की खोज करने लगते हैं दूसरी ओर कहीं छुपने के स्थान की तलाश करते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त एक तीसरा रास्ता भी है। यह मार्ग इतना स्पष्ट और प्रत्यक्ष है फिर भी आप से छुपा हुआ है और वह मार्ग है नीन्द से जग जाना। जागते ही आप स्वप्न के सर्प भय से मुक्त हो

जाते हैं। जाग्रत स्थिति में आप स्वयं को ऐसी ही परिस्थितियों से घिरे पाते है। आपकी सहज बुद्धि इन समस्याओं से जुझने या बचने के लिए अनेक प्रकार के उपाय करती है। परन्तु वेदान्त इन सभी समस्याओं को समाप्त करने का एक और मार्ग बताता है और वह है अपने परात्पर और भावातीत स्वरूप को उद्घाटित कर सांसारिकता के इस दीर्घ स्वप्न से जग जाना। स्वप्न के अध्ययन से आपको अनेक प्रकार की आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। आपके अन्दर विद्यमान असीम शक्ति स्रोत का रहस्य ज्ञात होता है। आप पलक मारते समस्त सृष्टि का सृजन एवं लय कर सकते है। क्योंकि तत्वतः आप आत्मा हैं।

जब आप जाग्रत से स्वप्न की ओर बढ़ते है तो आप पाते हैं कि यदा कदा आप गहरी निन्द्रा (सुषुप्ति) की अवस्था में भी प्रवेश कर गये है। इस स्थिति में संसार की सारी चेतना समाप्त हो जाती है। फिर भी कोई व्यक्ति ऐसा नही कह सकता कि गहरी निन्द्रा में उसका अस्तित्व रहता हो नहीं है। यदि ऐसी बात होती तो सुषुप्ति अवस्था अत्यन्त दुःखद स्थिति होती। परन्तु आप देखते है कि अच्छी नीन्द लेने के लिए लोग कितनी व्यवस्था बनाते और कितने प्रकार के साधनों को प्रयुक्त करते हैं। गहन निन्द्रा में आनन्दानुभुति का रहस्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए वेदान्त की '‘त्रिपदा'' को समझना होगा। जाग्रत और स्वप्न इन दोनों ,अवस्थाओं में 'ज्ञाता', 'ज्ञेय' और 'ज्ञान की त्रिपदा बनी रहती है। इस स्थिति में 'द्रष्टा', 'दृष्य' और 'दृष्टि' तथा आत्मनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ और इन दोनों के पारस्परिक सबन्धों की चेतना वर्तमान रहती है। इसी त्रिपदा के कारण समस्या उत्पन्न होती है और आपको अनेक प्रकार से कष्टों का अनुभव होता है। आप निरन्तर कुछ देखते, सुनते और अनुभव करते हैं। जाग्रत और स्वप्न इन दोनों अवस्थाओं मे आप को अपनी कामनाओं और मानसिक तनावों का निरन्तर ज्ञान बना रहता है। जाग्रत और स्वप्नावस्था के अनुभवों से थक जाने के बाद आप सुषुप्ति अवस्था में प्रवेश करते हैं जहाँ "त्रिपदा" समाप्त हो जाती है। इस स्थिति में आपको एक अद्भुत और रहस्यमय आनद

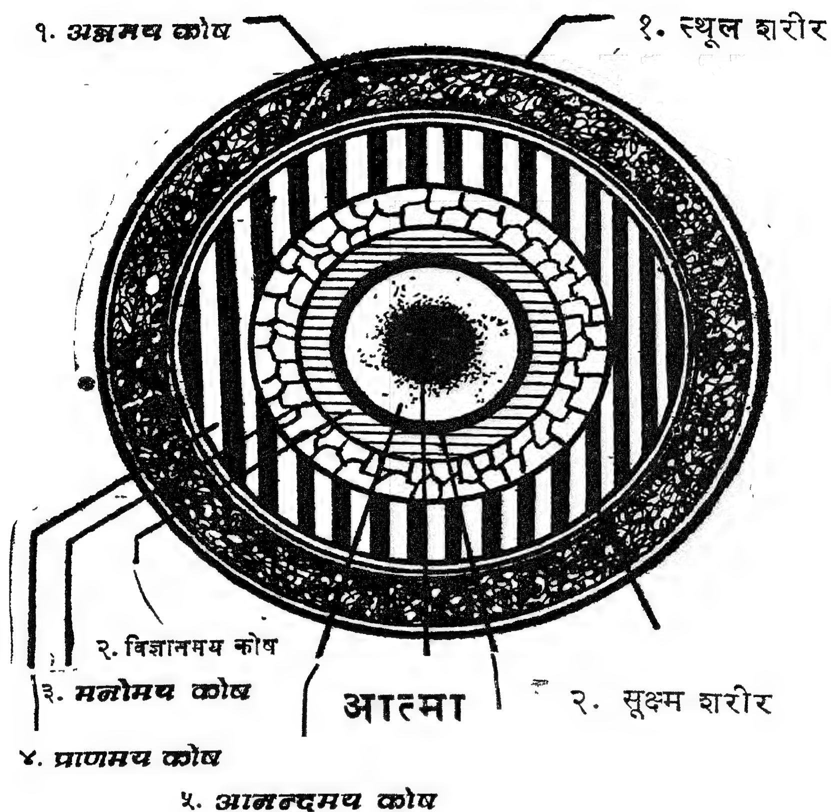
का अनुभव होता है। सुषुप्ति अवस्था में जाग्रत और स्वप्न संसार को 'त्रिपदा' से अप्रभावित केवल आपका गहन स्वरूप ही रहता है।

आत्म ज्ञान के पूर्व आपको जाग्रत और स्वप्न जगत की त्रिपदा की चेतना मे पुनः वापस लौटना आवश्यक होता है। अपने मन को आप इस प्रकार प्रबुद्ध बना लेते है कि जाग्रत अवस्था में चाहे कुछ भो क्यों न हो, आपके समक्ष कैसी भी परिस्थिति क्यों न उपस्थित हो जाय आप त्रिपदा से प्रभावित नही होते और जीवन की गहन वास्तविकताओं को अच्छी तरह समझने लग जाते हैं। तब जाग्रत और स्वप्नावस्था की घटनायें एक अभिनय की तरह प्रतीत होने लगती हैं और आप इस संसार को मृगतृष्णा की तरह देखने लगते हैं। संसार रहता है, इन्द्रियों द्वारा इसका बोध होता है, व्यावहारिक जोवन में अनेक प्रकार की वस्तुओं का उपयोग होता है—पानी प्यास बुझाता है और चिलचिलाती धूप में छाया सुखद प्रतीत होती है परन्तु, इन सबके बाद भी एक सत्य की ज्योति निरन्तर जलती रहती है कि यह सब कुछ नश्वर, भ्रामक और क्षणभंगुर है। इसलिए आपमें कभी भी अत्यधिक आसक्ति और निर्भरता नहीं होती। आपकी अन्तर्आत्मा के परिप्रेक्ष्य में इस सीमित संसार का कोई अस्तित्व नहीं है। आपही सब कुछ है। जिस सृष्टि में सब कुछ एकता के सागर में समाहित है तो आप पृथक व्यक्ति कैसे हो सकते हैं ? जब इस अवस्था की अनुभूति हो जाती है तो आपको आत्मसाक्षात्कार का लक्ष्य प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार आप इन तीनों अवस्थाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए इनके महत्व का चिन्तन करे।

तीन शरीर एवं पंचकोश

वेदान्त द्वारा प्रस्तुत स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण इन तीनों शरीर के विश्लेषण से आप अपने स्वरूप की सार्वभौमिकता के विषय में और ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जाग्रत अवस्था में आपको अपने स्थूल शरीर की, स्वप्नावस्था में सूक्ष्म शरीर की और सुपुप्ति में कारण शरीर की चेतना रहती है। आप तीन शरीर नही वरन, तीनों शरीर आपके उपादान हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार आप उपयोग में लाते हैं।

तीन शरीर एवं पंचकोष



३. कारण शरीर

मनुष्य का व्यक्तित्व तीन शरीर—स्थूल, सूक्ष्म और कारण जो पाँच कोष—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय मे विभक्त है से निर्मित है। आत्मसाक्षात्कार इन कोषो के परे जाने पर प्राप्त होता है।

वास्तव में आप परात्पर आत्मा हैं जो इन तीनों शरीरों के माध्यम से क्रियाशील हैं।

इन तीन शरीरों का जब हम और अधिक विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि ये कई कोशों के मिलने से बना है। जिस प्रकार आप अपनी तलवार म्यान (कोश) में रखते हैं उसी प्रकार से आत्मा स्वयं को कई कोशों के आवरण में ढ़ंकी रखती है। इन तीन शरीर को पंचकोशों में विभक्त किया जा सकता है। इस विश्लेषण के अनुसार स्थूल शरीर को केवल एक ही कोश है जिसे 'अन्नमय कोश' कहते हैं। सूक्ष्म शरीर में तीन कोश हैं जिसे 'प्राणमय' (प्राण), 'मनोमय' (मन एव इन्द्रियाँ) एवं 'विज्ञानमय कोश' (बुद्धि एवं अहंकार) कहा जाता है। कारण शरीर के कोश को 'आनन्दमय' कोष' कहते हैं जो गहन अचेतन का प्रतीक है। इसका अनुभव सुषुप्ति अवस्था में किया जाता है जबकि सुख-दुःख और अन्य प्रकार के सांसारिक अनुभव समाप्त हो जाते हैं। इस स्थिति में आपको एक अद्भुत आनन्द का अनुभव होता है। अतः इसे आनन्दमय कोश कहा जाता है। इन सभी कोषों के अन्दर तथा इनसे परे आपकी आत्मा स्थित है।

वेदान्तिक विश्लेषण की सभी प्रक्रिया आपको इस भ्रान्ति से कि "मै यह शरीर एवं परिसीमित व्यक्तित्व हूँ" से ऊपर उठाकर "मैं कौन हूँ ?" प्रश्न के गंभीर उत्तर की अनुभूति कराने वाली हैं। वेदान्त दर्शन आपको बार-बार इस बात का स्मरण कराता है कि भौतिक शरीर तो परिवर्तित होता रहता है परन्तु आपके अन्दर विद्यमान आपका वास्तविक रूप—"मैं हूँ" कभी नही बदलता। भौतिक शरीर तो कर्म पर टिका होता है। जिस पल शरीर के लिए कर्म समाप्त हो जाते आप दूसरा शरीर धारण कर लेते हैं। योग में पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त का अध्ययन अपने आप में एक बहुत गहन एवं विषद विषय है।

योग वसिष्ठ में दो भाइयों की एक कथा का वर्णन है। जब उनके माता पिता का देहान्त हो गया तो बड़ा भाई अपने दुःखी और विलाप करते छोटे भाई को समझाते हुए कहा—"प्यारे भाई, तुम माता-पिता

के देहान्त से इतने दुःखी क्यों हो ? अपने लाखों जन्मों में तुम्हारे अनन्त पिता-माता, सम्बन्धी और मित्र हो चुके हैं। जब तुम अपने उन माता-पिता के लिए कोई विलाप नहीं करते तो इनके लिये इतने दुखी क्यों हो ?" दूसरे शब्दों में यह आत्मा इस भौतिक शरीर से सर्वथा पृथक है। एक के बाद दूसरे व्यक्तित्व में आपका आन्तरिक स्वरूप ढ़लता जाता है और आप अज्ञान के कारण अपने यथार्थ स्वरूप को पहचान नहीं पाते। परन्तु अज्ञान के समाप्त होते ही आप अपने यथार्थ स्वरूप की अनुभूति कर लेते है। तब अपने शरीर को ही आप अपना यथार्थ रूप नहीं अनुभव करते।

इस प्रकार चिन्तन की विविध प्रविधियाँ अपना कर आप स्वयं को इस स्तर तक ले जाने का प्रयास करते हैं जहाँ आप शरीर को यथार्थ स्वरूप से अलग समझ सकें। जब आप यह समझने लगेंगे कि "मैं भौतिक शरीर नहीं वरन् आत्मा हूँ" तो यह अध्यात्म पथ पर अत्यन्त उच्च उपलब्धि और विकास है। इस प्रकार की अनुभूति से आपके मानसिक स्वरूप में आमूल रूपान्तरण हो जाता है। जब आप यह समझ लेते हैं कि आप तत्वतः आत्मा है तो आप किसी भी काय की जिम्मेदारी लेने में पीछे नहीं हटते। भले ही इसे पूरा करने के पहले ही आपका देहान्त क्यों न हो जाय। आप अच्छी तरह समझते है कि आप शरीर पर निर्भर नहीं हैं। जब आपको आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है तो आपके सभी कार्य समाप्त हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त कोई व्यक्ति जब शरीर के भ्रम में नहीं उलझता तब वह अच्छी तरह समझ लेता है कि वह न तो स्थूल शरीर है और न ही इससे आसक्त है तो उसके व्यक्तित्व में सभी दिव्य गुण विकसित हो जाते हैं। आत्मनिष्ठ संत और सामान्य व्यक्ति में यही अन्तर है। जब आप शरीर से अनासक्त रहते है तो आप शरीर और इसके सम्बन्धियों के संसारमें ही रहते हैं। आपकभी ऐसा नही सोचते किआपएक अनन्त ब्रह्माण्ड में रह रहे हैं जहाँ सभी आपके सम्बन्धि हैं। सच्चाई तो यह है कि सभी लोग आपके माता-पिता या भाई-बन्धु है। आपने असंख्य बार जन्म ग्रहण किया है। अनेक लोगों के साथ सम्बन्ध बनाया है।

आप जहाँ भी देखते हैं अपने मित्र और सम्बन्धियों को ही देखते हैं। यदि उच्च दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो आप चारो ओर अपने को ही देख रहे हैं। समस्त ब्रह्माण्ड एक शरीर है और वह आप ही हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी जबआप इस धारणा का कि 'मैं यहशरीर हूँ'' का विश्लेषण करते हैं तो आपको अपने भ्रम का ज्ञान हो जाता है। चूँकि यह स्थूल शरीर इस भौतिक जगत से अपृथक है फिर आप स्वयं को समस्त सृष्टि से पृथक एक व्यक्ति कैसे मान लेते हैं? एक पल के लिये भी आप स्वयं को इस भौतिक जगत से पृथक नहीं कर सकते। शरीर इस पंचभूत जगत में विलीन हो जाता है और स्थूल जगत के विभिन्न अवयवों से पुनः शरीर की कोशिकाओं का निर्माण होता है। प्रत्येक सातसे नौ वर्षों में शरीर की समस्त कोशिकायें नवीन कोशिकाओं से प्रतिस्थापित हो जाती हैं। आप पूर्णतः नवीन एवं पूर्व से भिन्न शरीर प्राप्त कर लेते हैं। विज्ञान का ऐसा ही मत है और यदि यह सत्य है तो आपका शरीर इस समस्त विश्व ब्रह्माण्ड से अपृथक्य रूप से सम्बन्धित है। इस प्रकार यदि आप यह कहते हैं कि मैं शरीर हूँ तो इसके साथ ही आपको यह भी कहना चाहिये—''मैं समस्त ब्रह्माण्ड हूँ।''

इसी प्रकार यदि आप यह कहते है कि ''मैं शरीर और जीवन बनाये रखने वाली शक्ति—प्राण हूँ'' तो आपको यह भी कहना चाहिये—' मैं ब्रह्माण्डीय जीवन—प्राण हूँ। ठीक इसी तरह आपका मन भी ब्रह्माण्डीय मन (हिरण्य गर्भ) से वैसे ही सम्बन्धित है जैसे लहरें सागर से जुड़ी होती हैं। अतः यदि आप स्वयं को मन मानते हैं तो आप ब्रह्माण्डीय मन भी है। यदि आप बुद्धि हैं तो आप ब्रह्माण्डीय बुद्धि—ब्रह्मा भी हैं। इस प्रकार अपने अस्तित्व के सभी स्तरों पर आप ब्रह्माण्ड से अपृथक रूप से सम्बन्धित हैं।

इसलिए जब आप 'मैं कौन हूँ?' का अन्वेषण करते हैं तो आप यह समझने लगते हैं कि आप न तो यह शरीर हैं और न ही आप इस संसार पर निर्भर हैं। समस्त भौतिक वस्तुयें भ्रामक एवं नश्वर है।

आपको कोई भी चीज बांध नही सकती। आप निरन्तर मुक्त हैं और इस समझ के साथ ही सार्वभौमिकता की एक अद्भुत भावना विकसित होती है। "मैं सार्वभौमिक हूँ। मैं सर्वत्र हूँ।" आप वेदान्त के इस अलौकिक रोमाञ्च की झलक प्राप्त करने लगते हैं जहाँ आत्मनिष्ठ संत अनुभव करता है—"मैं ही समस्त ब्रह्माण्ड हूँ। जो कुछ भी है वह मैं ही हूँ अहम् इदम् सवम्।"

महान संत वामदेव के विषय में उपनिषदों में यह वर्णन आया है है कि अपनी माता के गर्भ में ही उन्होने यह उदघोष किया था— "मैने देवताओं के उदगम स्रोत को जान लिया है। सभी बन्धनों को तोड कर मैं हस की तरह परात्पर आत्मा में मुक्त विहार करता हूँ। मैं ही मनु था। मैं ही सूर्य हूँ। वास्तव में मै ही सब कुछ हूँ।" उपनिपदों के अनुसार वामदेव अपने पूर्व जन्म में भी महान संत थे परन्तु कुछ अपराधों के कारण उन्हें आत्मानुभूति नहीं हुई थी। माता के गर्भ मे आते ही वह अपराध समाप्त हो गया। परिणामतः उन्हें गर्भ में ही पूर्णता की अनुभूति हो गयी।

जिस प्रकार अज्ञानी को "मैं यह शरीर हूँ" की सहज एवं स्वाभाविक चेतना रहती है वैसी सहजता से ही प्रबुद्धता प्राप्त संत को "मैं ब्रह्माण्डीय परमात्मा हूँ" की चेतना बनी रहती है। जैसे हो आप इस अनुभूति की ओर बढ़ते हैं वैसे ही आपका सम्पूर्ण व्यक्तित्व रूपान्तरित हो जाता है। आप ससार की छोटी चीजों की कामना नहीं करते। आप अपने अहम से ऊपर उठ जाते हैं। ऐसा होते हो आपका व्यक्तित्व परमेश्वर की दिव्य इच्छा पूर्ति का एक रचनात्मक माध्यम बन जाता है। इसलिए मानवता के कल्याण के लिए सत महात्मा महान कार्य करने में समर्थ हो जाते है। जितना अधिक आप अहकार रहित होते है उतना ही अधिक आप आध्यात्मिक रूप से उन्नत हैं चाहे आपने कोई योग साधना की हो या नही। उन्नति की कसौटी अहंकार की न्यूनता है। महान लोगों की जीवनी पढ़ने से आपको ज्ञात होगा कि उनकी महानता इस बात पर निर्भर रही है कि वे कितना अधिक अपने अहंकार को सुसंस्कृत, न्यून अथवा समाप्त कर अपने अन्दर स्थित परमेश्वर के प्रति समर्पण भाव विकसित किये थे।

श्रवण, मनन, निदिध्यासन और अनुभूति

ज्ञान मार्ग पर चलने वाले साधक जो अपने अहंकार को समाप्त कर उससे परे होना चाहते है उनके लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन (ध्यान) का नियमित अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। सदग्रन्थों की शिक्षाओं का श्रवण एक कला है जिसे विकसित करना आवश्यक है। आवश्यक चित्तशुद्धि के लिए साधकको सत्सङ्ग करना अनिवार्य है। उसे महात्माओं की सेवा करनी चाहिये जिससे उसके अन्दर के विकार (काम, क्रोध, लोभ इत्यादि) समाप्त हो जाय। उसे नम्रता, उदारता और संतोष जैसे दिव्य गुणों को विकसित करना भी आवश्यक है। इन सदगुणों को आप जैसे-जैसे विकास करते जायेंगे आपकी बुद्धि जीवन के गहरे रहस्यों और मूल्यों को ज्ञात करने की ओर अधिक आकृष्ट होने लगेगी। इस स्थिति में आप अहकार की कर्कश ध्वनियाँ सुनने के बदले नवीन चेतना और समझ ग्रहण करने की तीव्र सुग्राहकता विकसित कर लेते है।

ज्ञानयोग का दूसरा सोपान है—चिन्तन। उपनिषदों की शिक्षा श्रवण करने के पश्चात आप चिन्तन करते हुए यह समझने का प्रयास करते है कि यह जगत स्वप्न की तरह नश्वर एव भ्रामक है। आपके अन्दर एक मात्र वास्तविकता—आत्मा है। समस्त ब्रह्माण्ड की मूलभूत वास्तविकता भी यही आत्मा है। समस्त ब्रह्माण्ड आत्मा के पट पर प्रतिबिम्बित छाया चित्रों की तरह है। यह ठीक सिनेमा के तरह है जिसमे आप अनेक प्रकार की रोचक कहानियों का अभिनय देखते हैं। कहानी मे कोई सुख का प्रसंग होता है कोई दुःख का। कही हास्य होता है तो कहीं भयावह वर्णन। कहानी में परमाणु बम का विस्फोट भी हो सकता है परन्तु प्रत्येक परिस्थिति में चित्रपट अप्रभावित रहता है। ठीक इसी प्रकार से आपके व्यक्तित्व में शाश्वत आनन्द का एक चित्रपट (पर्दा) है जिस पर मन द्वारा सांसारिकता का अभिनय चलता रहता है। चूँकि वास्तव में आप सांसारिकता की विभिन्न क्रियाओं में नहीं संलग्न है; इसलिये आप एक द्रष्टा, साक्षी और अनासक्त व्यक्तित्व विकसित करने का प्रयास करते हैं। ऐसा होते ही

आप आध्यात्म पथ पर उन्नति आरंभ कर देते हैं। चिन्तन के द्वारा ऐसी विरक्ति विकसित कर लेते हैं जिसके कारण आप सांसारिकता के भ्रम जाल में नही उलझते।

उन्नत साधकों में चिन्तन की प्रक्रिया किसी समय विशेष तक ही सीमित नहीं रहती वरन निरन्तर चलती रहती है। अपनी बुद्धि का आप सभी समय उपयोग करते हैं। यह पूछने के बदले कि "मेरा क्या है और इसे मैं कैसे प्राप्त कर सकता हूँ?" आपको 'मैं कौन हूँ?' प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। कालान्तर में आप देखेंगे कि आपका अधिकांश मानसिक विकषण और चित्त विक्षेप समाप्त हो गया है। इस प्रश्न को अपने सन्मुख लाते समय अत्यधिक सुग्राहकता और सच्चाई की आवश्यकता होती है।

श्रवण एवं मनन के बाद निदिध्यासन (ध्यान) आता है। वेदान्त में ध्यान एक ऐसी सूक्ष्म क्रिया है जिसके द्वारा आप अपनी बुद्धि का प्रवाह ब्रह्म—परमात्मा की ओर सतत बनाये रखने में सफल होते है। इससे आप ईश्वर साक्षात्कार करने में सफल होते हैं। हमलोग ब्रह्मन और आत्मन इन दो शब्दों का प्रयोग करते हैं। आपकी अन्तर्आत्मा—आत्मन है तथा समस्त ब्रह्माण्ड की एक मात्र वास्तविकता—ब्रह्मन है। वेदान्त दर्शन के अध्ययन एवं विश्लेषण से आपको ज्ञात होता है कि समस्त ब्रह्माण्ड की मूलभूत वास्तविकता—ब्रह्मन और आपके व्यक्तित्व की वास्तविकता—आत्मन ये दोनों एक हो हैं। 'मैं वही हूँ" महावाक्य का यही निहितार्थ है। आपके अन्दर 'मैं हूँ" और सम्पूण ब्रह्माण्ड के मूल में वर्तमान 'वह' दोनों एक ही है। जेसस की महान घोषणा—"ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है" और 'तुम स्वयं नहीं जानत' तुम ईश्वर हो' का भी अर्थ यही है अतः समझने की बात यह है कि आप नश्वर व्यक्तित्व धारी नहीं बल्कि दिव्य आत्मन हैं। जब आप ससार की नश्वरता और भ्रान्तियों को समझने लगते हैं तो इस प्रकार की चेतना आपके मन में निरन्तर बनी रहती है। आपको बुद्धि ब्रह्मन की ओर सतत प्रवाहित होने लगती है और ब्रह्मन ही आपकी सर्वप्रिय वस्तु हो जाते हैं।

ऐसा देखा गया है कि जब कभी आपको यह पता लग जाता है कि किसी स्थान विशेष मे बहुमूल्य खजाना छुपाया हुआ है तो आपका मन बार-बार वहाँ चला जाता है। इसी प्रकार जब समस्त समस्याओं और कष्टों को समाप्त कर अनन्तता तक विकसित करने वाली अन्तर्आत्मा रूपी खजाने की झलकआपको प्राप्तहो जाती है तो आपका मन निरन्तर उसी का चिन्तन करने लगता है। जिस प्रकारम एक मधुमक्खी मधू की ओर स्वभाविक रूप से आकृष्ट होती है उसी प्रकार आपकी बुद्धि "मैं ही ब्रह्मन हूँ" इस दिव्य सत्य का दृढ़ निश्चय,-संकल्प और समझ उत्पन्न करने लगती है। यह सब निदिध्यासन के अन्तर्गत होता रहता है। जब यह सतत चलता रहता है तो आप में अन्तःप्राज्ञिक बुद्धि विकसित हो जाती जिससे अज्ञानावरण विनष्टहो जाता और आत्मसाक्षात्कार के रूप में आप साधना की सर्वोच्च उपलब्धि प्राप्त कर लेते हैं।

जन्म-मृत्यु से पूर्व मुक्ति ही आत्मसाक्षात्कार है जिसे आप अपने जीवन में ही प्राप्त कर लेते है। आपका लक्ष्य मृत्यूपरान्त मुक्त होने का नहीं बल्कि जीवन मुक्ति का है। जब आपकी बुद्धि सभी भौतिक वस्तुओं की नश्वरता को देखने लगती है तो संसार मे रहते हुए आप उसी प्रकार से मुक्त और स्वतन्त्र रहते है जैसे आकाश अनेक प्रकार प्रकार के बादलों के आने जाने से तटस्थ और अप्रभावित रहता है। इस प्रकार की दृष्टि उत्पन्न होते ही वाह्य रूप से तो आप मानवता के कल्याणार्थ अनेक प्रकार के कर्मो में व्यस्त रहते है परन्तु आन्तरिक रूप से आप सभी आसक्ति, दुःख एव समस्याओं से मुक्त रहते है। ऐसे योगी के कर्म मानवता की सेवा के लिए ही प्रतिफलित होते हैं। ऐसे व्यक्ति की चेतना से ही सर्वोच्च संस्कृति और उपलब्धि निःसृत होती है जिस पर मानवता को गर्व है। जिन लोगों ने स्वयं को अहम चेतना और शारीरिक चेतना से ऊपर उठा लिया है उनके द्वारा ही मानवता को सर्वोच्च उपहार प्रदान किया गया है। ये हो महात्मा और आत्मज्ञानी है जिनके अभाव में यह संसारअन्धेरे में घूमता रहता।



५

समस्या और समाधान

यह जीवन अनेक प्रकार की समस्याओं से घिरा है। अतः इसके विषय में गहन दार्शनिक अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करना आवश्यक है। जब समस्या आती है तो मन अनेक प्रकार के संशय तथा द्वंद्वों से घिर जाता है। संशयशील तथा द्वंद्वों में उलझा हुआ मन किसी भी समस्या का समाधान नहीं निकाल सकता। इसके अतिरिक्त कई बार जो समाधान किया जाता है वह अत्यन्त सतही तथा तात्कालिक हुआ करता है। इस स्थिति में किसी समस्या का समाधान हुआ प्रतीत होता है परन्तु, कोई दूसरी उत्पन्न हो जाती है। इसलिए यदि आप समस्या उत्पन्न करने वाले अपने व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक आधार समझ लेंगे तो उन समस्याओं को समाप्त करने की आवश्यक अन्तर्दृष्टि भी उत्पन्न कर लेंगे।

योग दर्शन के अनुसार मानव मन तीन गुणों के प्रभाव में रहता है। ये गुण हैं सात्विक, राजसिक एवं तामसिक। जब सात्विक प्रभाव प्रबल होता है तो आप समता, सामजस्य, शांति एवं संतुलन का अनुभव करते हैं। जब रजस प्रबल होता है तो मन व्यग्र, विक्षिप्त एवं अनेक विषयों में उलझा रहता है। तमस के कारण मन में मूढ़ावस्था होती है और व्यक्ति आलस्य एवं अकर्मण्यता का शिकार हो जाता है। जब आपका मन शान्त और सात्विकता से प्रभावित है तो अत्यन्त जटिल समस्या भी

सहज एवं महत्वहीन प्रतीत होती है। इसके विपरीत यदि आपका मन रजस के प्रभाव में है तो सामान्य स्थिति भी एक भयानक समस्या के रूप में दिखाई पड़ने लगती है। मन इन त्रिगुणों से हमेशा प्रभावित होता रहता है। इसलिये इन्हें अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है।

जब मन व्यग्र और विक्षिप्त होते हैं तो जैसे चुम्बक लौह कण को आकर्षित करता है वैसे ही आप समस्याओं को आकर्षित करते है इस तथ्य को सहज रूप से समझने के लिये एक कथा है। एक समय की बात है कोई आदमी किसी दुकान से मधु खरीदने गया। परन्तु, खरीदने से पहले वह मधु को चखना चाहता था। मधु चखने के क्रम में कुछ मधु जमीन पर गिर गया। शीघ्र ही मधु की उस पर मखियाँ टूट पड़ी। पास की दीवाल से एक छिपकली मक्खियों को खाने के लिये घात करने लगी। दूकानदार की पालतु बिल्ली ने छिपकली के नीचे उतरते ही पलक मारते दबोच लिया। ऐसा करने के क्रम में ग्राहक के कुत्ते की नजर बिल्ली पर पड़ी। देखते देखते कुत्ता बिल्ली का पीछा करने लगा और उसे मार डाला। इससे दूकानदार और ग्राहक के बीच भयानक झगड़ा शुरू हो गया। दूकानदार अपने मित्र एवं सम्बन्धियों को बुलाकर ग्राहक से लड़ने लगा। इतने में ग्राहक की ओर से भी उसके मित्र एवं सम्बन्धी आकर लड़ने लगे। इस प्रकार एक घनघोर युद्ध छिड़ गया। दो बूँद मधु के.पीछे अनेक लोगों को ी. आई और बहुमूल्य सम्पत्ति नष्ट हो गई।

इस कहानी का प्रतीकात्मक अर्थ इस बात की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है कि कोई समस्या कैसे उत्पन्न होती है। मधु की बूँदों के टपकने की तरह जब आपके व्यक्तित्व में कुछ गड़बड़ी हो जाती है तो मन व्यग्र (रजस) हो जाता। इसके कारण वृत्तियों (मक्खियाँ) का एक समूह मन को ठीक करने के लिये उस बूँद (गड़बड़ी) के पीछे चल पड़ता है। छिपकिली की तरह इन्द्रियाँ मन की वृत्तियों के पीछे चल पड़ती है। बिल्ली की तरह आपका मन इन्द्रियों के पीछे चलने लगता है और कुत्ते की तरह आपका अहंकार मन (बिल्ली) के पीछे भागने लगता है। इस प्रकार आप शीघ्र ही एक

आन्तरिक संग्राम में स्वयं को उलझा पाते हैं। इसलिए जब आप समस्या का निरपेक्ष भाव से सूक्ष्म विश्लेण करेंगे तो आप इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि तुच्छ और महत्वहीन कारण ही भयानक बन जाता है। जब आप में सत्व का प्रभाव होगा तो आप पायेंगे कि जिसे आप बहुत कठिन तथा दुष्कर समझ रहे थे। वह तो वास्तव में सहज एव अत्यन्त तुच्छ है। कठिन समस्या भी सात्विक प्रभाव में सहज एव महत्वहीन हो जाती है जिसे आप आसानी से पार कर लेते हैं। आप उससे परे चले जाते हैं।

सभी समस्याओं के पीछे कर्म सिद्धान्त क्रियाशील होता है। कर्म सिद्धान्त एवं कर्मों के बीज व्यक्ति के मन में ही संग्रहित हैं। इसलिये मन एवं इसके नियंत्रण के विषय में कुछ सहज एवं सामान्य बातों की जानकरी लेनी आवश्यक है जिससे आप जीवन में आने वाली प्रतिकूल परिस्थितियों को सही ढङ्ग से सामना करने की पूरी तैयारी कर लें।

सत्व का परिवर्द्धन एवं विकास

इन सभी तथ्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है सात्विक संस्कारों का विकास। यह कोई सहज कार्य नहीं है बल्कि, उन्नत दार्शनिक जीवन अपना कर अपने अन्दर विकसित करने वाली एक कला है। अपने दैनिक जीवन को ऐसे व्यतीत कीजिये जिससे आप अशुभ के बदले शुभ संस्कारों की ही अभिव्यक्ति और विकास करें।

सद्ग्रन्थों में सात्विकता विकसित करने की जो अनेक विधियाँ बताई गई हैं उसमें सबसे महत्वपूर्ण सत्सङ्ग है अर्थात स्वयं को धार्मिक दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक लोगों को संगति में लाना जहाँ आपको जीवन के महान उद्देश्य, लक्ष्य एवं प्रयोजन की शिक्षा सुनने को मिलती है। जब आप परमेश्वर की महिमा का गुणगान सुनते और अपने जीवन के मूलभूत उद्देश्य एवं प्रयोजन के विषय में गहरी अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करते हैं तो आपका मन सभी चिन्ताओं को त्याग कर एक दूसरी ही दुनियाँ में विचरने लगता है।

सत्व के विकास में सहायक दूसरा साधन है सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय। संसार के समस्त संत महात्माओं की रचना तथा गीता और उपनिषद् जैसे सद्ग्रन्थों के अध्ययन से चिन्तनशील बनने की कला विकसित कीजिये। एक और साधन है सेवा–अपनी शक्ति को मानवता के कल्याण में समर्पित करना। इसमे आपकी चित्तशुद्धि होती है।

इन सभी साधनों से आपका मन उन्नत और सात्विक बनता है जिस से आप काम, क्रोध, लोभ, द्वेष एवं अन्य प्रकार से अपनी शक्ति व्यर्थ नहीं करते। जब आपकीबुद्धि ऐसी स्वस्थ स्थिति में रहेगी तो आप प्रत्येक स्थिति को सही परिप्रेक्ष्य में देख सकेंगे। प्रत्यक परिस्थिति आपके विकास के लिए दिव्य ईश्वरीय योजना का एक आवश्यक अंश के के रूप में दिखाई पड़ने लगेगी। आप अपनी परिस्थिति का मूल्यॉकन अहंकारिक दृष्टि से नही करेंगे। परिणामत: किसी भी अवस्था मे आप यह नही सोचगे—"हाय मैं तो लुट गया। मेरे लिए अब कोई रास्ता नहीं। मैं अब इससे बाहर नहीं निकल सकता। भगवान भी इस कठिन समस्या को दूर करने का कोई समाधान नही जानते।" इसके विपरीत आप अच्छी तरह समझते हैं कि आपके अन्दर वतमान परमेश्वर यह जानते हैं कि आपका वास्तविक आन्तरिक स्वरूप इन सबों से परे है और किसी भी समस्या का हमेशा एक न एक समाधान अवश्य है। जब आपकी बुद्धि परिशुद्ध और सात्विकता के प्रभाव में होती है तो आप ऐसी अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करते हैं।

धनात्मक बनें

सत्व के विकास के साथ-साथ धनात्मक बनने की आदत डालिय। यदि आप सावधान नही हैं तो आपका मन ऋणात्मक, उत्तेजना एवं क्रोध के संस्कार विकसित कर लेगा। एक बार यदि आपको ऋणात्मकता की आदत लग गई तब चाहे कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो आप की प्रतिक्रिया अधीरता एवं व्यग्रता की होगी।

इस तथ्य को एक उपाख्यान के द्वारा आकर्षक रूप में समझाया जा सकता है। एक धनी व्यक्ति ने अपने मित्रों एवं सम्बन्धियों के लिए

प्रीति भोज में सुन्दर-सुन्दर व्यञ्जन तैयार करवाया। परन्तु उनमें यथोचित नमक डालना नौकर भूल गये। जब भोजन के समय इस बात की जानकारी हुई तो धनी व्यक्ति को बहुत क्रोध हुआ परन्तु, अपने मेहमानों के सामने वह क्रोधित होना नही चाहता था। जब सारे लोग चले गये तो वह अपने नौकरों पर आग बबुला हो गया। कुछ दिनों के बाद उसने पुनः एक प्रीतिभोज का आयोजन किया। इस बार नौकरों ने बहुत सुन्दर भोजन तैयार किया। सभी लोग बहुत प्रसन्न थे और ने खाना बनाने वालों की बहुत प्रसंशा कर रहे थे। परन्तु बाद में मालिक नौकरों को बहुत डाँटा। नौकर बड़े आश्चर्य में पड़ गये— "यहाँ सब लोग इतनी प्रसंशा कर रहे हैं और आप हमें डाँट रहे हैं ?" मालिक ने कहा—"मैं इसलिये क्रोधित हूँ कि तुम लोगों ने ऐसा ही काम पहले क्यों नहीं किया ? यदि तुम्हें इतना अच्छा भोजन बनाने आता था तो पिछली बार क्यों नहीं ऐसा भोजन तैयार किया ?"

इस कथा का अभिप्राय यह है कि यदि आप उत्तेजित होना चाहते हैं तो किसी भी बात पर कभी भी उत्तेजित हो सकते हैं। यदि उत्तेजना का कोई कारण नहीं है तो आपका मन कोई न कोई कारण निकाल लेगा। जब मन ऋणात्मक वृत्ति एवं दोष दर्शन का अभ्यस्त हो जाता है तो आप अपने क्रोध एवं द्वेष की भावना को सही सिद्ध करने का असफल प्रयास करने लगते हैं। दूसरी ओर जब आप अपने मन को अच्छी तरह प्रशिक्षित कर लेते हैं तो अत्यन्त विषम परिस्थिति में (यहाँ तक कि जब आप दूसरों से अपमानित होते हैं) भी विचलित नही होते। आप शान्त एवं धनात्मक भावों से परिपूर्ण रहेंगे। आप इन परिस्थितियों को परमेश्वर द्वारा ली जानेवाली परीक्षा समझेंगे। आप अनुभव करेंगे कि परमेश्वर आपको ऐसी कठिन स्थिति में यह जाँचने के लिये रख रहे हैं कि आप अपने मन को नियन्त्रित करने में समर्थ हो रहे हैं अथवा नहीं। इस प्रकार का धनात्मक भाव आपको प्रयत्न पूर्वक विकसित करना चाहिये।

इस लक्ष्य को पाने में मंत्र जप अत्यधिक सहायक होता है। मंत्र रहस्यमय शब्द अथवा शब्दों का समूह है जिसमें असीम शक्ति निहित

रहती है। उपनिषदों के अनुसार 'ॐ' बीज मंत्र है। यह परमेश्वर का प्रतीक सबसे लघु मत्र है। आप अपनी धारणा और विश्वास के अनुरूप कोई मंत्र अथवा परमेश्वर के किसी भी नाम का जप कर सकते है। अपने मन को प्रेरित करने वाले किसी भी नाम को चुनकर उसे श्रद्धा भक्ति पूवक जपने की कला सीख लीजिये। जब उसका जप करें तब ऐसा अनुभव करने का प्रयास करे कि परमेश्वर आपके अन्दर विद्यमान है। अनुभव कीजिये कि आप ईश्वर के और अधिक समीप होते जा रहे है। यदि आप इतने विचारशील नही है तथा अपने मत्रों का यत्रवत जप कर रहे है फिर भी इससे आपका अचेतन मन रहस्यमय ढङ्ग से उन्नत होगा तथा प्रेरणा प्राप्त करेगा। मत्र जप सबसे सहज साधन है जिसके द्वारा आप स्वय में आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति विकसित कर अपनी समस्याओं को नवीन परिप्रेक्ष्य में देखते हुए उनसे परे हो जाते है।

विहङ्गम दृष्टि

इसके बाद आपको अगली महत्वपूर्ण बात यह ध्यान में रखनी है कि जब तक आप आध्यात्मिक जागृति के द्वारा किसी समस्या से ऊपर नही उठ जाते तब तक यह अत्यन्त विकट एव भयंकर प्रतीत होती है। इसके विपरीत जब आप उस समस्या से ऊपर उठकर उसकी विहंगम दृष्टि प्राप्त कर लेगे तो आपको इसके समाधान के भी कई रास्ते दिखाई पड़ने लगेगे। इसके बिना आप स्वय को समस्याओं में उलझा लेगे तथा आपको अनुभव होगा कि इससे बाहर निकलने का कोई भी मार्ग नहीं है। आप अपना सर्वनाश देखने लगगे तथा आपको केवल अँधकार का ही अनुभव होगा। परन्तु जब आप समस्या में पूरी तरह उलझे बिना उसका सामना करने का रहस्य ज्ञात कर लेते हैं तो आप मानसिक प्रशान्ति, ध्यान और ईश्वरार्पण के पंखों पर चढ़कर उसके ऊपर उठजाते हैं। आप अपनी अन्तःप्रज्ञा की सहायता से उसका कैसे सामना किया जाय इसकी अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं।

जीवन की समस्याओं की एक विहंगम दृष्टि लेने की बड़ी सुन्दर कला वेदान्त बतलाता है। इस विधि में वेदान्त आपको यह परामर्श

देता है कि आप अपने व्यावहारिक जीवन को समस्याओं को उसी प्रकार अनासक्त एवं निर्लिप्त होकर देखें जैसे आप जग जाने के पश्चात स्वप्न की समस्याओं को देखा करते हैं।

एक स्वप्न के उदाहरण से हम इस तथ्य को और स्पष्टता से समझ सकेंगे। किसी स्वप्न में आप देखते हैं कि एक भयानक सप आपका पीछा कर रहा है यही आपकी समस्या है। अब आप स्वयं से पूछते हैं कि इस समस्या को मैं कैसे दूर करूँ? आपकी बुद्धि कहती है—'एक डंडा खोजकर लाओ और उससे साँप को मार डालो। यदि डंडे से सर्प नहीं मरता तो इससे कहीं दूर भाग जाओ।"

अब थोड़ी देर ठहर कर स्वप्न की इस समस्या और समाधान पर विचार करें। क्या इन दोनों में से किसी का कोई वास्तविक अस्तित्व है। जब आप जगे हैं तो आप इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लेते हैं कि स्वप्न की समस्याओं का कोई वास्तविक आधार नहीं होता। ये तो मन के द्वारा रचित, कल्पित एक भ्रामक संसार के कारण ही है। आप स्वयं ही सर्प तथा उसके द्वारा पीछा किया जाने वाला व्यक्ति दोनों, बन जाते हैं। यह सब एक खेल ही है। जिस क्षण आप यह अनुभव कर लेते है कि आप स्वप्न देख रहें तो आपका स्वप्न कितना भी कष्ट दायक अथवा समस्याओं से घिरा क्यों न हो महत्वहीन हो जाता है आपके लिए समस्याओं का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

उपरोक्त उदाहरण में आपके स्वप्न समाधान का क्या हुआ? क्या वह वास्तविक समाधान है? निश्चत रूप में इस समाधान को ठीक नहीं कहा जा सकता। प्रथम यदि आप उस सर्प को मार देते हैं अथवा उससे दूर भाग जाते हैं तो भी आपकी स्वप्न कल्पना इतनी चचल होती है कि आप दूसरे सर्प की सृष्टि कर सकते हैं जो किसी कोने में बैठा आपका पीछा करने की प्रतीक्षा में हो सकता है। इस प्रकार आपकी समस्या पुनः आरंभ हो सक[illegible] है। दूसरी बात यह है कि आपके द्वारा जो स्वप्न में समाधान निका[illegible] जाता है वह भी आपको [illegible] के ससार में ही रखता है जो स्वयं में [illegible] तथा एक भ्रम है। [illegible] चेतना

अनन्त समस्या एवं समाधानों का सृजन कर सकती है। परन्तु सच्चा और वास्तविक समाधान यह है कि आप जगकर स्वप्न संसार से बाहर आ जायें। यदि आप स्वप्न में हैं तो चाहे कैसा भी सर्प या डण्डा क्यों न हो आप सही समाधान नहीं प्राप्त कर सकते। इसलिए सर्प को मारने अथवा उससे डर कर भागने के बदले आप जगने का प्रयास करें यही भावातीत समाधान है।

वेदान्त का कथन है कि जिस दृष्टिकोण से आपने स्वप्न वाले उदाहरण को देखा है उसी दृष्टिकोण से जीवन को भी देखिये। संकीर्ण अहंकारिक व्यक्तित्व के साथ एकात्मता के कारण आप अनुभव करते हैं कि आपके समक्ष बहुत समस्यायें हैं और आप उन्हें दूर करने के लिए अनेक प्रकार के मार्ग खोजते रहते हैं। आप धन में सुख की खोज करते और धन प्राप्त कर लेने के पश्चात अनुभव करते हैं कि इससे आपकी समस्याओं का समाधान नहीं हुआ तो आप किसी दूसरी वस्तु को प्राप्त करने के पीछे दौड़ने लगते हैं। आप नाम, यश और अधिकार के पीछे भागते हैं। इन्हें प्राप्त करने के बाद भी आप अनुभव करते कि इनसे भी आपकी समस्यायें नहीं सुलझी इस प्रकार आप समस्याओं का केवल सतही (आभासी) समाधान खोज पाते हैं। इस विधि में एक समस्या दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाती है। जब तक आपका मन अविद्या से प्रभावित होता रहता है तब तक यही चक्र चलता रहता है।

इसलिए अपनी समस्याओं के जाल में उलझने के बदले आप क्यों नहीं मूल समस्या की ओर अपनी दृष्टि ले जाते हैं? किसी कारण वश आप अपने सार्वभौमिक आन्तरिक आत्मस्वरूप से बिछुड़ गए हैं। आपके अन्तमन में ब्रह्माण्डीय आत्मा वर्तमान है परन्तु आप यह स्वप्न देख रहे हैं कि आप क्षुद्र अहम् केन्द्र हैं। अहकार के साथ ऐक्य स्थापित करने के कारण आप अनुभव करते हैं—"मैं यह शरीर हूँ। मैं अनेक चीजों पर निर्भर हूँ। मुझे जन्म मृत्यु से प्रभावित होना पड़ता है।" ये सभी भाव उस भ्रामक धारणा के कारण उत्पन्न होते हैं कि आप एक परिसीमित व्यक्तित्वधारी व्यक्ति हैं।

दूसरी ओर जब आपकी चित्त शुद्धि हो जाती है और आप मन को प्रशिक्षित कर लेते हैं तो अविद्या का प्रभाव आपके ऊपर कम होने लगता है तब आप यह अच्छी तरह समझने लगते हैं कि आप के अन्दर जो 'मैं हूँ' है वही शाश्वत है। अहंकारिक व्यक्तित्व तो शाश्वत जीवन सागर में उठने वाली एक तरंग मात्र है। आप तरंग नहीं बल्कि सागर है। तरङ्गों के दृष्टिकोण से अनेक समस्यायें हैं। परन्तु सागर की दृष्टि में कोई भी समस्या नहो है। न तो कुछ प्राप्त होता है नहीं कुछ खोया जाता है। आप की अन्तरात्मा अनन्त सागर के सदृश है जैसे ही यह अन्तदृष्टि उत्पन्न हो जाती है आप अपनी समस्याओं पर एक विहंगम दृष्टि डाल सकते हैं। फिर उन्हीं तक परिसीमित नहीं रह जाते।

जब आपको यह अनुभव होता है कि आप स्वप्न देख रहे है तो आपके स्वप्न के समस्त दुःख समाप्त हो जाते हैं और आप खेल की भावना से स्वप्न की समस्त घटनाओं को देखने लगते हैं। ठीक इसी प्रकार से जब आपको अपने यथार्थ स्वरूप के विषय में गहन अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जायेगी—अर्थात् जब आप अच्छी तरह यह समझने लगेगें कि—'मैं यह शरीर नहीं हूँ' तो आप जीवन की घटनाओं के प्रति भी एक खेलभावना उत्पन्न कर लेंगे। तब आपको इस संसार से कोई खतरा अथवा भय नहीं रहेगा। समस्याओं से आपका मन बोझिल नहीं होगा। आप इन सबों से सर्वथा मुक्त एवं स्वतंत्र होंगे। इस प्रकार समस्याओं को समाप्त करने का उन्नत साधन है—अविद्या के रूप में जो मूल समस्या है उसको समाप्त करने का प्रयास तथा आत्मज्ञान प्राप्त कर इसे हमेशा-हमेशा के लिए निर्मूल करना।

शरणागति

आत्मज्ञान के आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वालों के लिये सभी समस्याओं को सुलझाने का सही साधन है परमेश्वर के प्रति पूण समर्पण—अर्थात शरणागति। इस सत्य की अनुभूति करने का प्रयास करें कि आपका जीवन एवं व्यक्तित्व निरन्तर दिव्य ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत सुरक्षित एवं अवलम्बित है। ईश्वरीय योजना में विश्वास कीजिये। व्यावहारिक जीवन में आपको कई जगह विश्वास करना पड़ता है।

आप किसी सैलून में बैठे दाढ़ी बनाने के क्रम में नाई के हाथ में तेज उस्तरे का विश्वास करते हैं कि यह गले पर चलाते हुये भी गला नहीं काटेगा। आप हवाई जहाज में उड़ते हुए उसके पाईलट पर विश्वास रखते हैं। आप अपने दैनिक जीवन में अनेक बातों का विश्वास करते है तो जिस ईश्वरीय योजना एवं शक्ति से आपका शरीर निर्मित हुआ है उस पर क्यों नहीं विश्वास करते ? आपकी अबोध अवस्था में जब सामान्य चेतना भी विकसित नही हुई थी उसके पूर्व से ईश्वरीय करुणा का वात्सल्य पूर्ण हाथ आपकी देख रेख करते हुए आपको बढ़ने और विकसित होने में सहायता कर रहा था। उस समय की सभी आवश्यकतायें भी बड़े रहस्यमय ढङ्ग से पूरी होती गई। गहरी नीन्द में जब आपको अपने शरीर के ऊपर कोई नियंत्रण नहीं होता उस समय भी आप इसी दिव्य ईश्वरीय योजना द्वारा सुरक्षित और संपोषित होते रहते हैं।

आप बार-बार इस ईश्वरीय शक्ति एवं योजना को स्मरण कर उसमे विश्वास उत्पन्न करने का प्रयास करें। ऐसा करने से आप एक तनाव रहित शान्त व्यक्तित्व विकसित करने में सफल हो सकेंगे। आप यह समझने लगेगे कि जीवन में अनायास ऐसे ही कुछ घटित नहीं हो जाता। प्रत्येक स्थिति का एक निश्चित एवं महान उद्देश्य है। किसी परिस्थिति विशेष को देखकर उससे भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। कोई भी विपदा से उसकी पूर्व कल्पना अधिक कष्टप्रद एवं दुःखदाई होती है। लोग बिपदाओं का पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) करके इसे वास्तविकता से अधिक कष्टप्रद बना कर स्वयं को दुःखी करते हैं। लोग बहुत महान अभिनेता हुआ करते हैं। सच्चाई तो यह है कि जीवन की घटनायें बड़े सहज एवं साधारण रूप से घटित होती हैं। यहाँ तक कि मृत्यु भी सहज एवं स्वाभाविक रूप में आती है परन्तु मृत्युभय से व्यक्ति का राम-राम प्रकम्पित हो जाता है और व्यक्ति आजीवन इससे प्रभावित रहता है। इसलिए ईश्वर में विश्वास करना एक महत्वपूर्ण एवं रहस्यमय कला है।

महान राजा परीक्षित को यह ज्ञात था कि वे अगले सात दिनों में मरने वाले हैं। परन्तु मृत्यु से बचने के लिये उन्होंने पानी से घिरे एक

विशाल किला का निर्माण कराया। उसमें सभी प्रकार की सुरक्षा का प्रबन्ध किया। किले के अन्दर श्रेष्ठ चिकित्सक, मांत्रिक, संत और महात्माओं को रखा जिससे कि समय पर उनकी सेवा ली जा सके। सुरक्षा कर्मियों की नजरों से बचकर किला में प्रवेश करना किसी के लिये भी संभव नहीं था। छः दिन व्यतीत हो गये और सातवें दिन का भी सूर्यास्त होने वाला था। उसी समय उत्साही युवकों का एक दल राजा परीक्षित को सम्मान से पुष्पों का गुलदस्ता भेंट करने आया। राजा उन फूलों को देखते हुये अभिमान से कहने लगे—"अब तो ऋषि के श्राप का समय समाप्त हो गया है। जो कहा था वह मिथ्या सिद्ध हो गया। सात दिन समाप्त हो गये परन्तु मेरे लिये तो कभी भी भय का कोई समय नहीं आया।" ऐसा कहते हुए उन्होंने एक पुष्प उठाया जिसके अन्दर एक छोटा सा कीड़ा चल रहा था। अभिमान एवं गर्व से चूर राजा परीक्षित ने व्यंग्य करते हुए उस छोटे से कीड़े को उठाकर अपनी गरदन पर रखते हुये कहा—"ऐ छोटे कीड़े यदि तुम ऋषि के श्राप को सत्य करना चाहते हो तो मुझे काटो।" वह छोटा सा किटाणु पलक मारते ही विशाल सर्प के रूप में बदल गया और परीक्षित को डस लिया। तत्क्षण ही राजा का देहान्त हो गया। इस कथा का संदेश यही है कि ईश्वरीय योजना को परिवर्तित नहीं किया जा सकता है तो इससे भागें क्यों? इसके विपरीत जो निश्चित नियति है उसे साहस एवं वीरता पूर्वक स्वीकार करने की कला विकसित करें।

महाभारत में असंख्य लोग स्वचालित अस्त्रों से (जो उस समय के एटम बम थे) मारे जा रहे थे। किसी के लिये बचना संभव नहीं था। इसी घोर युद्ध में ऐसा हुआ कि चिड़ियों के कुछ अण्डों पर हाथी से टूटकर एक घण्टा ऐसे गिरा कि सारे अण्डे उससे ढक गये। जब महाभारत युद्ध समाप्त हुआ तो खून, लाशों के अम्बार और घनघोर विनाश के बीच भी चिड़ियों के नन्हें-नन्हें बच्चे चहक रहे थे मानो कुछ हुआ ही न हो। इस कहानी का संदेश यह है कि यदि ईश्वर की योजना में आप सुरक्षित हैं तो विनाश और भयंकर प्रलय काल में भी आपको कुछ नहीं होगा।

ईश्वरीय योजना में ऐसा ही विश्वास विकसित कीजिये। ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत जो होना है वह तो होकर ही रहेगा। साथ ही जो भी इस योजना के अन्तर्गत है वह आपके हित में ही है। इसलिये उसे होने दीजिये। ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत कुछ भी गलत नहीं होता। उत्तेजित होने अथवा अपने मन को तनावग्रस्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि आप अपने मन में ऐसा विश्वास उत्पन्न कर लेते हैं तो आपके अचेतन मन में समता, संतुलन, शान्ति और शुभ संस्कार संग्रहित होने लगते हैं। इन शुभ संस्कारों के कारण आपके व्यक्तित्व में सत्व की प्रबलता हो जाती है और आप अपनी समस्त समस्याओं का सहज समाधान प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं।

गीता में योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण एक महान घोषणा करते हैं :—

"यदि कोई मेरी भक्ति करता है, निरन्तर मेरा स्मरण करता है और जो हमसे अनन्य प्रेम करता है; मैं उसकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करता हूँ। उसके योग एवं क्षेम की सुरक्षा मैं स्वयं करता हूँ।"

मानव मन दो चीजों के लिये हमेशा चिन्तित रहता है। पहली चिन्ता है कि जो उसके पास नहीं है उसे कैसे प्राप्त किया जाय दूसरी जो उसके पास है उसकी रक्षा कैसे हो ?" इन्हीं दो दिशाओं में व्यक्ति अपनी मानसिक शक्ति को व्यर्थ खोता रहता है। जब आपको ईश्वर में विश्वास उत्पन्न हो जाता है तो आप अपने लिये आवश्यक वस्तु के उपार्जन के निमित्त उद्योग तो करते हैं परन्तु आपका प्रयास तनाव रहित होता है तथा इसमें आपकी मानसिक शक्ति का व्यर्थ अपव्यय नहीं होता। फिर भी आपको वे समस्त वस्तुयें बड़े ही रहस्यमय ढङ्ग से स्वतः प्राप्त हो जाती है। परन्तु इस विश्वास का यह अर्थ नहीं कि आप निष्क्रियता और जड़ता को प्रश्रय दें तथा यथोचित आत्म-प्रयास का परित्याग कर दें। इसके विपरीत आपसे यही अपेक्षा की जाती है कि आप अपनी सर्वोत्तम योग्यता और प्रयास से किसी कार्य को सम्पादित करें। अपनी शक्ति के अनुसार आप जितना संभव है उतना प्रयास

करते हुए स्वयं को तनाव रहित रखें। व्यग्रता एवं उत्तेजना की मानसिक अग्नि में स्वयं को दग्ध नहीं करते रहें। तब आप अनुभव करेंगे कि जिस चीज की आपको जरूरत है परमेश्वर उन्हें बड़े ही रहस्यमय ढङ्ग से आपको प्रदान कर रहे है। इसी प्रकार जो भी आपके पास है उसकी सुरक्षा अपनी सर्वोच्च क्षमता एवं योग्यता को प्रयुक्त करते हुए करें। परन्तु इसी क्रम में भी आपको कहीं कोई चिन्ता अथवा व्यग्रता नहीं उत्पन्न करनी चाहिये क्योंकि सभी चीजें दिव्य ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत रहस्यमय ढङ्ग से स्वतः सुरक्षित हैं।

तनाव रहित मन ही आत्मसाक्षात्कार के महान लक्ष्य की ओर जा सकता है। जब मन विश्रान्त और तनाव रहित नही होता तो इसकी समस्त शक्ति व्यर्थ एव तुच्छ वस्तुओं की प्राप्ति में ही विनष्ट होती रहती है। किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये आप वर्षों तक प्रयत्न करते हैं परन्तु जब वह आपको मिल जाती तो आप अनुभव करते कि यह तो कपूर की तरह है जिसे लाख प्रयत्न के बाद भी उड़ने से नही रोका जा सकता। इसलिये इस निश्चय के साथ—कि परमेश्वर आप की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा अटूट विश्वास विकसित कीजिये।

कश्मीर के एक गरीब ब्राह्मण के विषय में एक बहुत रोचक कहानी है। ये महानुभाव लोगों को गीता पढ़कर समझाया करते थे। जब श्रीकृष्ण की घोषणा वाला उपरोक्त श्लोक उनके सामने आया तो उन्होंने लाल कलम से उसे रेखांकित कर दिया—"इस दिव्य घोषणा मे कही न कहीं कोई त्रुटि अवश्य है। यद्यपि मैं पूरी तरह ईश्वर के चरणों मे समर्पित हूँ परन्तु परमात्मा ने मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की।" इसके बाद भी उन्होंने स्वयं को स्वाध्याय, सत्सग, मन्त्र जप एवं प्रार्थना मे संलग्न रखा। उन दिनों ब्राह्मण की पुत्री का विवाह होने वाला था। इसकी तिथि भी निश्चित हो गई और बारात की तैयारी होने लगी। गरीबी के कारण ब्राह्मण के पास न तो दान दहेज देने के लिये कुछ था और नही बारातियों के स्वागत सत्कार करने की क्षमता थी। इस स्थिति मे क्या करना चाहिये यह बात ब्राह्मण की समझ में नहीं आ रही थी। इस

समस्या से छुटकारा पाने के लिये ब्राह्मण ने सब कुछ भूलकर स्वयं को पूरी तरह सत्सङ्ग एवं स्वाध्याय में संलग्न कर लिय ।

एक दिन ब्राह्मण कहीं दूर गीता का व्याख्यान देने चले गये थे। उनके घर एक अत्यन्त सुन्दर एवं सुकुमार बालक एक बैलगाड़ी सामान लेकर आया। उन सामानों में बारात के खाने पीने की सामग्री, मिठाइयाँ गहने, कपड़े तथा शादी के लिये आवश्यक सामग्री थी। सुन्दर बालक ने ब्राह्मण की पत्नी से कहा कि पंडित जी ने इन सामानों को शादी के लिये भेजा है। साथ ही उसने पंडिताइन से देर से गाड़ी लाने के लिये क्षमा याचना की। ब्राह्मण की पत्नी ने देखा कि उस नन्हें बालक की पीठ पर गहरा लाल निशान है तो उसने बड़े प्रेम से पूछा—"तुम्हें किसने इस क्रूरता से मारा है?" बालक ने सहज मुस्कान बिखेरते हुये कहा—"आपके पति ने हमें चाबुक से मारा है।" ब्राह्मणी बहुत लज्जित हुई और उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि बालक को क्या कहे। "मेरे पति इतने निष्ठुर एवं क्रूर नहीं हो सकते हैं" मन ही मन उसने सोचा। सारा सामान उतार देने के बाद बालक गाड़ी लेकर चला गया।

ब्राह्मण जब घर वापस आये तो उनकी पत्नी पहले तो सामान भेजने के लिये उनकी प्रशंसा की और बहुत खुश हुई। चूँकि ब्राह्मण ने तो कोई सामान नहीं भेजा था इसलिए यह सुनकर उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उनके आश्चर्य करने पर पत्नी ने भी विस्मय भरे शब्दों में पूछा "क्या गाड़ी चलाने वाले बच्चे को देर से गाड़ी लाने के लिये तुमने उसे चाबुक से नहीं मारा था?" यह सुन कर ब्राह्मण और चकित हुआ! पूरी बात सुनने पर उन्हें अनुभव हुआ कि एक दिव्य चमत्कार हो गया है। गाड़ी चलाने वाला बालक स्वयं श्रीकृष्ण थे और गीता में उनकी घोषणा को लाल से रेखांकित करने की प्रक्रिया ही उन्हें चाबुक लगाने जैसी थी।

यह अत्यन्त रोचक कथा है जिसका संदेश है कि जीवन में चमत्कार हुआ करते हैं। यदि आप अपने जीवनाधार परमेश्वर में पूर्ण विश्वास करेंगे तो आपकी आवश्यकताओं की रहस्यमय ढङ्ग से पूर्ति हो जाएगी।

आपके चतुर्दिक अन्तर्वाह्य जगत में निरन्तर चमत्कार हो रहे हैं। यदि आप इन सब को समझ लेंगे तो आपको आश्चर्य होगा कि परमात्मा एक साथ कितने चमत्कार किया करते है। इस भयकर भव वाधा के मध्य भी मस्तीष्क के तन्तु कैसे जीवित हैं ? आप विकट एवं घनघोर परिस्थितियों से गुजरते हैं फिर भी जब तक आपका प्रारब्ध है तब तक आपका बालबांका भी नहीं होता। यह एक चमत्कार है। आप भोजन ग्रहण करते हैं यही भोजन आपका अस्थि और मांस बन जाता है। यह एक चमत्कार है। पृथ्वी के अन्दर से सुन्दर एवं सुकोमल अंकुर निकल आता है। यह एक चमत्कार है। चमत्कार निरन्तर हो रहा है। भगबान जेसस ने कहा था—"Behold the lilies of the field, how do they grow ? they spin not they toil not, and yet. I say unto you Solom on in all his wisdom was not arrayed like one of these." इस प्रकार के जो चमत्कार हर पल हो रहे हैं वे सुग्राही मन को रोमांचित कर देते हैं। जब आप इसे देखने लगते तो आपके जीवन को जो ईश्वरीय शक्ति बनाये रखो है उसमें गहन विश्वास उत्पन्न कर लेते।

अतः ईश्वर की शरण में जाइए। ईश्वर में विश्वास कीजिए। मंत्र जप कीजिए। अपनी समस्या से परे उठने का प्रयास कीजिए। धनात्मक मन बिकसित कर सत्संग कीजिये। समस्याओं के समाधान प्राप्त करने के लिए ये सब आवश्यक अवयव है। जैसे-जैसे आप इन सद्‌गुणों को बिकसित करने लगेंगे आप मूल समस्या—अविद्या को समाप्त करने में सफल हो जायेंगे। आत्मज्ञान से ही इसे दूर किया जा सकता है। ज्योंही आप आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि के द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करने लगेंगे वैसे ही आपको ईश्वर समर्पण के दिव्य माधुर्य और ईश्वरीय योजना में पूर्ण विश्वास का आनन्द प्राप्त होने लगेगा। आप पायेंगे कि ईश्वर भक्ति के कारण आपका हृदय द्रवित हो रहा है तथा आपकी वैयक्तिक चेतना ब्रह्माण्डीय चेतना में समाहित हो रही है। आत्मसाक्षात्कार के कारण प्राप्त प्रबुद्धता से आप अनुभव करेंगे—"मैं यह शरीर नहीं हूँ।" तब आप जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जायेंगे और सांसारिक समस्याओं का आपके लिये कोई मूल्य नहीं रहेगा। बादल आते जाते रहते हैं परन्तु आकाश हमेशा वही अप्रभावित और असङ्ग रहता है। ※

Integral Yoga Books

—BY SWAMI JYOTIRMAYANANDA



About the Founder

Swami Jyotir Maya Nanda is well recognized as the foremost Proponent of Integral Yoga, a way of life and thought that synthesizes the various aspects of the ancient Yoga tradition into a comprehensive plan of personality integration.

Aims and Objects of the International Yoga Society

1 To spread the laws of spiritual life.

2 To promote understanding of the unity of life among all people, regardless of race, sect, creed and sex, and also to promote harmony among all religions by emphasizing the fundamental unity of all prophets, saints, sages and teachers:

3 To help suffering humanity by teaching the higher moral standards, prayers and meditations.

4 To give regular classes in the teachings Of Yoga, Vedanta and Indian philosophy.

5 TO promote Universal peace and Universal Love.

6 To promote the cultural growth of humanity on the basis of everlasting spiritual values of life.

7 To guide students and devotees all over the world.

8 To print and publish spiritual literatures.

9 Anyone devoted to the ideals of truth, non-violence and purity can be a member of this Society.

sses and succeed in any field of life. From beginning to advanced —a complete course in itself.

CONCENTRATION AND MEDITATION

Hard COver 200 pages | Order No-2 | Rs. 60-00

12 FULL MONTHS OF THE FINEST IN YOGA TEACHINGS

INTERNATIONAL YOGA GUIDE

Monthly magazine | Order No 3 | Rs. 50-00/yr

ANSWERS ALL YOUR QUESTIONS ON YOGA

Yoga Guide tells how you can live life to its fullest. The simple question-answer format clears any confused notions you might have about Yoga and the topics of—Success, WOrry, Karma, Drugs, Marriage, Sex, Meditation, Religion, Psychic Powers, Life after Death, Reincarnation and many more! Hundreds of direct helpful answers to give you a sure feel of what Yoga really is.

paper. 270 pages | Order No. 4 | Rs. 35.00

A STORY OF THE AGES

In an easy-to-grasp story from, Katha Upanishad reveals the deep mysteries of the soul. This enchanting tale will give you an interesting perspective of Oriental Mysticism and folklore. And at the same time, you'll uncover a wealth of helpful advice and practical hints for a rewarding life of increasing peace and happiness. With this complete account of Yoga philosophy, you'll have all that is needed for promoting a life of purpose, meaning and direction. Enjoy the journey into your innermost being. This charming narrative awaits as your guide in discovering the Mysteries of the Soul.

paper. 120 pages | Order No. 5 | Rs. 35.00



FROM THE GREATEST EPIC POEM EVER WRITTEN

With the exciting story of the great Mahabharata war as background, this book presents a picture of life in all its richness, in all its profundity and majesty, in all its struggles and pathetic conditions, and in all its glories and triumphs. It allows one to see and understand the Spiritual Plan in all apparent conditions of life. In this vast work you'll find the composite of all other Yoga scriptures.

THE WAY TO LIBERATION (Mahabharata), Vols I & II

paper. 250 pages each Order Nos, 6a, 6b Rs. 45.00 each

DISCOVER THE KEY TO A LIFETIME OF HEALTH, BEAUTY AND PROFOUND PEACE OF MIND

With this authoritative book on Yoga exercise, you can explore the complete Hatha yoga system leading to remarkable physical and mental well-being. Filled with a genuine sense of the ancient heritage from which this science comes', and written by a master of all Yogas, you are assured to benefit from the added dimensions not given in other Yoga books. See how Yoga exercises fit in with a complete plan of abundant living.

YOGA EXERCISES FOR HEALTH AND HAPPINESS

paper. 272 pages Order No. 7 Rs. 45.00

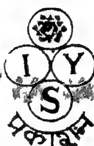
A JOURNEY INTO THE BEYOND

Now, a book crosses the thin line between life and death to tell of the mysterious phenomenon of after life, reincarnation and the Law of Karma. What are one's experiences after death ? Can we remember our past lives ? Free will vs. Fate and predestination. Clarify confusions to remove fear of death. Learn of death to know more about life.

DEATH AND REINCARNATION

Hard cover: 198 pagds **Order No, 8** Rs. 60.00

Books



WAYS AND MEANS

Yoga is more than intellectual theory. It also shows the necessary techniques that enhance the process of personality integration. It's a system of philosophy that presents practice as principle. Raja Yoga—Study of Mind is full of methods, techniques and helpful hints on exploring and controlling the incredible phenomenon of the mind. It's the "Ways and Means" of this popular segment of Integral Yoga. With it, investigate into the nature of sleep, memory, subconscious, unconscious and learn the art and skills of meditation, thought-culture, willpower and the removal of depression. A store house of useful knowledge.

RAJA YOGA —STUDY OF MIND

Hard cover : 108 pages Order No. 9 Rs. 55.00

SIMPLEST AND MOST DIRECT

Mantra and Kirtana are the simplest, most direct devices for elevating the mind. They are mystic syllables which, when repeated or sung, go right to the unconsious, to the heart of your being radically changing the pattern of your thinking and feeling. This book lists over 50 important Mantras and Kirtanas, along with their literal and mystic meaning. It lends insight into the choice of your own Mantra initiation, the Mala (prayer beads) Japa Yoga (the method of repeating Mantra) and the scientific theory behind this profound practice. In addition are included numerous illustrations and Yantras (mystic diagrams) for meditation. Ask about the accompanying one hour cassette tape with instruction, theory and actual recitation of the Mantras and Kirtanas themselves.

MANTRA, KIRTANA, YANTRA AND TANTRA

paper. 64 pages Order No. 10 Rs 35 00



MUSIC FOR THE SOUL

In the lofty tradition of Saint Mira, Kabira, Surdas and other mystic saints who enriched the Yogic culture with simple yet meaningful songs, Swami Lalitananda reflects her gift of spirtual melody. Swami Lalitanand writes songs of meditation, songs of relaxation, songs of joy, humour. tenderness—songs of life. Dive deep into the flowing melodies of this well-known composer kirtanist. Easily adapted to all instruments and voice parts, Yoga Mystic songs for Meditation is destined to join the ageless repertoire of cherished spiritual music.

YOGA MYSTIC SONGS FOR MEDITATION, I–V

Order Nos 15a, 15b, 15c, 15d, 15e Rs. 35.00 each

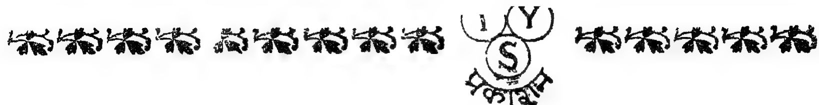
  

COME ALIVE

Now, Yoga articles of a practical nature come alive through the illustrious writtng of Sri Swami Lalitananda. For years, Swai Lalitananda has been the most energetic and devoted assistant to Guru Swami Jyotirmayananda. Ever dedicated to the promotion of human upliftment and ever giving of herse f to the glorious works of the Yoga Research Foundation, Swami Lalitananda (a noted author in her own right) has made available to all serious seekers guidance rich in the wisdom she radiates, 'Guideline, for Changing Your Life, Unfold Your Creative Ability, Master the Moodes of the Mind'—these are but few of the over 90 essays, poems and song lyrics generously presented by this model Integral Yogi,

YOGA IN LIFE

payer 268 pages Order No. 16 Rs. 35 00



A BEAUTIFUL FACE AND.....

......Ugly feet, a bedbug and a louse, a magic mat, a man with two drunkards and the cleverness of a donkey, Strangely enough, this group has real significance for those who have read and heard Yoga stories and parables of Swami Jyotirmayananda. Nothing can bring about as thorough an understanding of the Universal Truth in such an innocent and effortless way as these charming tales of Yogic heritage. Children will love them and the rest will be caught of guard by the inspired value of this two volume set of Yoga stories and parables.

YOGA MYSTIC STORIES

paper. 208 pages Order No. 17 Rs. 35.00

YOGA STORIES AND PARABLES

paper : 208 pages Order No. 18 Rs. 35,0(

CLIMB THE 8 YOGA STEPS TO PEACE AND HAPPINESS

This in depth study of the mind has been the basis of Yog practice since its wirting by Sage Patanjali, centuries before Chris Now, so that can control the immense powers of your mind, Raj Yoga Sutras has been written to be put into daily use, A carefu study of this advanced book will be invaluable in harnessin these infinite possibilities within you.

RAJA YOGA SUTRAS

paper. 240 pages Order No. 19 Rs, 45.(



OF REVELATION AND INSPIRATION

The Upanishads contain the highest philosophical thoughs....,. so concentrated that inspiration and revelation flow with every turn of the page. They are themselves the recorded revelation saints and sages received during Mystic Communion with the essence of the Universe—handed down from Guru to disciple since time immemorial. The Upanishads of this book will allow you to receive, directly the secret teaching of the Soul from the most qualified of teachers

YOGA WISDOM OF UPANISHADS

paper. 240 pages — Order No, 20 Rs. 45,00

BE IN CONTROL

From the wisdom of the great Yogis of India, masters of the mysterious powers of the mind, comes this leading book acquainting you with the endless resources of energy that lie within your own being. You can utilize powers of the mind that can enable you to be the master of your environment, author of your circum; stances and architect of your destiny. With the perspective of Integral Yoga in view, psychic powers become real attainments taking on a genuine meaning and significance rather than vain tricks or feats of magic. Be in control with Yoga Secrets of Psychic Powers and convert your life into an adventurous journey of peace and bliss.

YOGA SECRETS OF PSYCHIC POWERS

paper : 208 pages — Order No. 21 Rs, 45.00

Books



RIDDLE ME THIS

Who are you-? ..Many do not know. You are not merely a body Not just a mind not an individual with a name attached to it. You're not even a mixture of all these, Well then, who are you ? Puzzling isn't it ? But in a concise yet comprehensive book this riddle is solved. Jnana Yoga (Yoga Secrets of wisdom) presents the profound and systematic unfoldment of the most provocative philosophy ever revealed to mankind Learn about the origin of the world, the nature of God and the wisdom that transcends all boundaries of intellectual knowing. Jnana yoga —a philosophy for thinkers,

JNANA YOGA (Yoga Secrets of Wisdom)

paper : 64 pages Order No. 22 Rs, 20.00



THE LAST WORD

The roots of Yogic culture are planted in the Vedas (the earliest revelations of mankind). Based on this timeless wonder vedanta in Brief brings you this Philosophy—a word of hope, A word bubbling with thoughts that the same spirit that guides the courses of running streams and surging oceans, the same spirit that rules the heavens and the earth, exists in you —exists as you. Vedanta in Brief is that word. A word that reminds, "You are all that is. You are the immortal, imperishable, immutable Self," Vedanta in Brief - the end of the vedas. The ultimate in transcendental philosophy. The Last word.

VEDANTA IN BRIEF

paper. 224 pages Order No. 23 Rs. 35 00



FIRST IN THE WEST.
THE EARLIEST DETAILED WORK OF YOGA-VEDANTA

For 2500 years. this masterpiece has been among the greatest books ever written. Yoga Vasistha details the subtleties and insights of Yoga-Vedanta philosophy with a majestic sweep that hasn't been equaled in any meta-physical work since. Due to its well-guarded vault of hidden spirtitual secrets and complexities, philosophers and translators have shied away from bringing this Sanskrit work into English from, Now, with a wisdom deeply steeped in actual experience and a total mastery of both languages Swami Jotirmayananda boldly releases this golden set of literary splendor. A unique mixture of translation and commentaty, this series presents, in dialogue from, Sage Vasistha's spiritual instructions to Lord Rama. Follow Yoga Vasistha and follow the same path of inner realization tread by countless wise men over countless generations.

YOGA VASISTHA, Vols I & II

paper. 288 pages ea. Order No. 24a, 24b Rs. 45.00 Each

BUILD A STURDY FOUNDATION FOR ADVANCED YOGA

Quick removal of mental and physical obstacles in your personality offers you a glimpse of the unbounded potential that you now hold This book outlines how you can enjoy a life free of the complexities that prevent your advancement in Yoga, meditation and every form of success in life. Universally adopted by all religions of the world, the basic ethical qualities of Yoga offered here allow you to overcome all limitations that stand between you and your highest ambitions.

YOGA OF SEX-SUBLIMATION, TRUTH AND NON-VIOLENCE

paper. 208 pages Order No- 25 Rs, 45.00

Books



THE ULTIMATE IN SELF-ADVANCEMENT

It takes a degree of expertise to apply all aspects of Yoga in daily life. Applied Yoga grants this expertise. Gain a thorough understanding of the essence of major and minor Yoga through complete, conclusive discussionsion on selected Yoga topics. Here are some of the over 60 subject you'll learn in Applied Yoga—Abandonment of Desire and Duality, Enquiry of "Who Am I ?" Towards the Mastery of the Mind, Exercises in Meditation, Karma and Reincarnation, Important hatha and kundalini Yoga Exercise.

APPLIED YOGA

Hard Cloth : 212 pages Order No. 26 Rs. 60.00

CLASSIC AND PROFOUND—THE BHAGAVAD GITA

Yoga of perfection brings the Gita to us in a way never before. First the Gita presents us with ideal to follow. In a section on the characteristics of an illumined Sage and ideal devotee choice Sanskrit verses are translated word for word, and then elaborated open with the clarity and lucidness only an enlightened personality could offer. Next the Gita is also a fascinating story that reads and flows like a song. In "The Essence of the Gita" we get an accurate account of a hero's struggle, his conflicts and Krishnas liberating teaching. Whate's more since the Gita is the original scripture promoting an Integral path of Yoga, a section here points out this intimate relationship lacking in other Gita texts. And finally, in another section, important wellknown quotes are extracted from each of the 18 chapters. All in all, Yoga perfection holds out a fortune of wisdom, uniquely presented, exquisitily detailed and matchless in practical value.

YOGA OF PERFECTION

paper : 208 pages Order No. 27 Rs. 35.00



INTRIGUING

With Waking, Dream and Deep Sleep you can study the mysteries of the three states of consciousness.. gain an understanding of mental projection that reveals the true nature of your world... unravel puzzles of dream and sleep that baffle modern madical science. Furher through its lucid explanations and helpful instruciion in higher forms of meditation, this advanced study will prove an indispensable tool in entering the lofty state of awareness beyond Waking, Dream and Deep Sleep.

WAKING, DREAM AND DEEP SLEEP

paper : 64 pages Order No. 28 Rs. 25.oo

EVERYTHING YOU NEED

A detailed guide containing everything you need to get started on the road to a better life. A brief look at some of the contents explain why: Your Life—Accidental or Controlled ? Sentiments and Feelings, Yoga Ethics—A Universal Code; Concentration Meditation and Samadhi; Understanding Your Nature and Moods; What is Needed for Vedantic Study, Tantra and Kundalini Yoga, An Energy in Waiting Anatomy of the Astral Body; A Barometer of Spiritual Movement; How to Awaken Mystic Energy Make your Mantra more Effective, Hatha Yoga; Nature—A Healthful Alternative, Kriya Yoga.

INTEGRAL YOGA—A PRIMER COURSE

paper : 112 pages Order No. 29 Rs. 25 00

Books 

UP FROM THE DEEP

Through the ages an ocean of scriptural literature hass pru 🙰 from the noble Yogic culture. But most people, finding themselves drowned in the deep waters of an endlessly complex treatise, are unable to understand Yoga in its basic profundity and universal simplicity. From that same ocean, however, comes Yoga Essays for Self-Improvement. Like a cloud of life giving rain, it will reach out and touch you with its deep feeling and practical wisdom. Even without previous Yoga study or academic training, irrespective of faith or sectarian belief, you'll find a message that transforms an insight that reveals and a vision that leads to the expansive realms of peace and bliss.

YOGA ESSAYS FOR SELF-IMPROVEMENT

paper. 248 pages Order No. 30 Rs. 45.00

A UNIQUE POWER

The greatest art in this world is that of loving God—to enjoy the indescribable sweetness of Divine Love in the depths of our hearts, even the slightest taste of it can transform a crude person into a Saint. The experience of Divine Love melts all differences created by sect, creed or color, and is the fountain-source of everything good, beautiful and sublime in human society. Now Swami Jyotirmayananda brings us this classic, devotional work of Sage Narada Although a number of commentaries have been offered on Narada's teachings. The Yoga of Divine Love has a unique power all its own, containing the direct insights and experiences of Swami Jyotirmayananda whose whole life attests the force of devotion in our world.

THE YOGA OF DIVINE LOVE

paper . 240 pages Order No. 31 Rs 45-00



A LOOK INTO TODAY

Would you like more control over your mind ?...Have you ever wondered who you really are ?...Are you happy with your life ?...Do you know the meaning of love ?...Would yon like insight into solving all your problems ?...If these questions have relevance in your life' then Integral Yoga Today has what you need. In it, the author offers a new system of living that takes the essence of the world's great philosophies and religions, and blends them into a whole and total technique relevant to you in todays world.

INTEGRAL YOGA TODAY

paper : 82 pages Order No. 32 Rs. 20.00

हमारे हिन्दी प्रकाशन

रहस्यों का सहज बोध.....

ज्ञान-योग का सहज एवं आकर्षक विवेचन तथा उसे जीवनांतर्गत क्रियाओं में रूपांतरित करने का व्यावहारिक निर्देश। समस्त योग-दर्शनों का सार तत्व एवं गहन विश्लेषण।

ज्ञान–योग पृ० सं० : ६६ ऑडर न० ३३ मूल्य : ६.६०

योग का क्रियात्मक रूप......

समन्वित योग का संक्षिप्त परिचय तथा उसे दैनिक जोवन में व्यवहृत करने का गत्यात्मक मार्ग दर्शन।

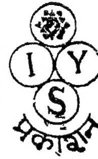
योगाचार पृ० सं० : ३२ ऑडर न० ३४ मूल्य : ४.७५

विद्यार्थियों के लिए........

समृद्धि, सफल, समुन्नत जीवन तथा संकल्प शक्ति के विकास की प्रेरणा देने, मानसिक उदासी, चिन्ता को समाप्त करने, योगासनों द्वारा सुख, शांति और पूर्णता प्राप्त करने की एक अत्यन्त प्रभावकारी पुस्तिका......**विद्यार्थियों को योग संदेश**

पृ० सं० : २४ ऑडर न० ३५ मूल्य : १.७५

Books



जीवन को समुन्नत बनाने के लिए सहज, व्यावहारिक एवं गद्यात्मक निर्देश······

युवक, विद्यार्थी, जीवन से निराश एवं आत्मानुभूति प्राप्त करने को इच्छुक लोगों को प्रेरणा, शक्ति एवं व्यावहारिक निर्देशों से परिपूर्ण एक अद्भुत पुस्तक। इसमें व्यक्त शिक्षाओं से योग दर्शन के पूर्व ज्ञान, बौधिक प्रशिक्षण, धर्म सम्प्रदाय की सीमा से परे सभी लोग अपने जीवन को रूपान्तरित करने वाले संदेश, भीषण समस्याओं को दूर करने की अन्तर्दृष्टि, आशातीत शान्ति और आनन्द प्राप्त करने का मार्ग दर्शन प्राप्त करेंगे—लघु लेखों का यह अनुपम संग्रह व्यावहारिक जीवन में योग को प्रयुक्त कर मानव को सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति कराने में अत्यन्त सहायक है। "द्वेष कैसे दूर करें, आध्यात्मिक शक्ति कैसे प्राप्त करे··· इत्यादि शीर्षक इस पुस्तक की व्यावहारिकता को स्पष्ट करते हैं। प्रत्येक पंक्ती एक विशेष प्रेरणा और शक्ति से भरी है जिसे पढ़ने वाला निश्चित रूप से अपने जीवन को रूपान्तरित करने का प्रयास आरंभ करेगा।

आत्मोन्नति के लिए योग निबन्ध

पृष्ठ संख्या : २४१ ऑडर न० : ३६ मूल्य : १८.००

पहली बार······

भय, चिन्ता, असुरक्षा से मुक्ति, सफलता, यौन, विवाह, राग-द्वेष ध्यान तथा व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित अनेक विषयों पर पूछे गये विश्व के अनेक जिज्ञासुओं के प्रश्नों के सटीक एवं प्रेरक उत्तर जिसे पढ़ कर आप परिवर्तित हुए बिना नहीं रह सकते।

योग संदर्शिका

पृष्ठ संख्या : २२८ ऑडर न० : ३७ मूल्य : १८.००



सत्संग का सतत् स्रोत······

अपने रहस्यमय आन्तरिक जीवन को उद्घाटित करने, दैनि जीवन में योग का व्यवहार, स्वाध्याय का विकास, दुःख-चिन्ता से मुक्ति, समस्याओं का समाधान और सुख, सफलता, समृद्धि एवं आध्यात्मिक पूर्णता के लिए विश्व प्रसिद्ध पत्रिका "इन्टरनेशनल योग गाइड" की सम्पादिका स्वामी ललितानन्द द्वारा रचित :—

जीवन में योग

पृष्ठ संख्या : २४६ ऑडर न० : ३८ मूल्य : १८.००

इन्टरनशनल योग सोसायटी की मासिक पत्रिका·

योग, दर्शन, सदाचार और उन्नत जीवन को समर्पित एक अनुपम मासिक जिसमें योगमार्तण्ड श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्दजी के विविध लेख प्रकाशित होते हैं। प्रत्येक लेख जीवन के एक विशेष पक्ष को समुन्नत करने के दिव्य उपदेश एवं प्रेरणा से परिपूर्ण। इसमें स्वामीजी के प्रभावशाली और परिवर्तनकारी लेख आपके जीवन के मूल आधार को ही एक नवीन और आध्यात्मिक दिशा प्रदान करते मिलेंगे जिसे एक बार पढ़कर आप बार-बार पढ़ना चाहेंगे।

योगाञ्जलि

पृष्ठ : ४८ ऑडर न० : ३९ मूल्य : २० रू० वार्षिक
एक प्रति १.७५

DISCOUNT : 10 o/o Books up to Rs. 100.
15 o/o Books up to Rs. 500.
20 o/o Books up to Rs. 1000.
30 o/o Books over Rs. 1000.

Special Discount for Libraries, Teaching Institutions and Religious organisations.